अहिंसा-वाणी

अहिंसा परमो धर्मः

वर्ष २
अंक ५

सम्पादक
कामता प्रसाद जैन

अगस्त
१९५२

विषय-सूची

			पृष्ठ
१—मातृ-शक्ति	[कविता]	रचयिता—कविवर 'शशि'	१
२—स्वाधीनता-सूक्ति-सञ्चयन	...	...	२
३—स्वाधीनता		ले०—महात्मा भगवानदीन	३
४—विद्या	[विचार-बिन्दु]	ले०—श्री बीरबल	६
५—हमें आन्तरिक स्वतंत्रता चाहिए		ले०—प्रो० रामचरण महेन्द्र	७
६—मुक्ति का भिखारी	[गद्य-काव्य]	श्री 'सुधेश'	६
७—गेटे की कृतियों में सत्य अहिंसा और स्वाधीनता		—ले०— क्लेरीसा ट्वाइले	१२
८—दो गीत	(गीत)	श्री रतन पहाड़ी	१५
६—सच्चा स्वातन्त्र्य	(रूपक)	वीरेन्द्र प्रसाद जैन	१७
१०—हे स्वतंत्रते !	(कविता)	श्री शालिग्राम शर्मा	२३
११—छात्रों से !	(कविता)	श्री सूरज सहाय शर्मा	२४
१२—स्वतंत्रता दिवस		ले०—प्रो० अनन्त प्रसाद जैन	२५
१३—कदम डगमगा उठे	(कविता)	रचयिता—श्री सागरमल वैद्य	३१
१४—जागरण	(कविता)	रचयिता—श्री 'सुमन'	३१
१५—लो, आजादी का दिन आया	(कविता)	रचयित्री—सुमन लता जैन	३२
१६—काँग्रेस और स्वराज्य		लेखक—मिथलेशचन्द्र जैन	३२
१७—साहित्य-समीक्षा	...	...	३३
१८—सम्पादकीय	...	...	३५

सम्पादक

कामता प्रसाद जैन

परामर्श-दातृ-परिषद्

जैनेन्द्र कुमार — यशपाल जैन
बैजनाथ महोदय — प्रकाशचन्द टोंग्या
सुरेन्द्र सागर प्रचण्डिया — शिव सिंह चौहान 'गुञ्जन'

वार्षिक शुल्क—पाँच रुपया ५) एक प्रतिका आठ आना ॥)

विशेषः—वाचनालयों, पुस्तकालयों तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं के लिए ४॥) वार्षिक मूल्य रखा गया है। अतः शिक्षा-संस्थाओं को लाभ लेना चाहिए।

बापू

अहिंसा वाणी

अहिंसा परमो धर्मः

वर्ष २ अङ्क ५ | अगस्त १९५२

"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं ।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ॥"—गुप्त

मातृ-शक्ति !

(श्री कल्याण कुमार जैन 'शशि')

निबल हुई है बल खो के आज मातृ-शक्ति,
भारत बसुन्धरा का नत हुआ माथ है ।
शौर्य शक्ति, बल, तेज, साहस का ह्रास हुआ,
क्लेश-कष्ट, रोग-शोक पग-पग साथ है ।
अपने महान पथ-दर्शन को भूलकर,
कल की सनाथ आज हो गई अनाथ है ।
जीवन जगाया तुमने ही देश में सदैव,
फिर लाज भारत की आप के ही हाथ है ॥

स्वाधीनता-सूक्ति-सञ्चयन

"सच्चा स्वराज्य तो अपने मन पर राज्य है। उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्म-बल अथवा दया-बल है। इस बल को काम में लाने के लिए सदा स्वदेशी बनने की जरूरत है।" —महात्मा गाँधी

"स्वराज्य का अर्थ है अपने पर काबू रखना, यह वही पुरुष कर सकता है जो दूसरों को धोका नहीं देता, माता-पिता, स्त्री-बच्चे नौकर-चाकर, पड़ौसी सब के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता है।" —महात्मा गाँधी

"हिंसा से राज्य मिलेगा, पर स्वराज्य मिलेगा अहिंसा से।"—विनोबा

"स्वतंत्रता राष्ट्रों का शाश्वत यौवन है।" —कौय

"जब हम यह कहते हैं कि हम स्वतन्त्रता को सर्वोपरि स्थान देते हैं तो उसका क्या अर्थ होता है? मैं बहुधा विस्मित हुआ करता हूँ कि हम अपनी कितनी अधिक आशाएं-आकांक्षाएं संविधानों, कानूनों और न्यायालयों पर लगाये रहते हैं। स्वतन्त्रता तो स्त्री-पुरुषों के हृदत की चीज है; जब यह वहाँ निर्जीव हो जाय तो कोई भी संविधान, कानून और न्यायालय उसकी रक्षा नहीं कर सकता.....;

"और यह स्वतन्त्रता है क्या? यह निर्मम अनियन्त्रित इच्छा का नाम नहीं है; यह मनमानी करने की आजादी भी नहीं है। वह तो स्वतन्त्रता का प्रतिषेध है और उसका सीधा परिणाम उसका विनाश है। जिस समाज में मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता पर कोई नियन्त्रण या मर्यादा नहीं मानते उसमें स्वतन्त्रता शीघ्र ही कुछ शक्ति-शालियों के हाथ का खिलौना बन जाती है; यह हमारा खेदजनक अनुभव है।

"हाँ, तो फिर स्वतन्त्रता की भावना क्या है? मैं इसका निरूपण नहीं कर सकता, मैं तो आपको केवल अपनी सम्मति बतला सकता हूँ। स्वतन्त्रता की भावना ऐसी होती है जिसमें निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यही बात ठीक है; स्वतन्त्रता की भावना वह होती है जिसमें अन्य स्त्री-पुरुषों के हृदय को समझने की चेष्टा की जाती है; स्वतन्त्रता की भावना उसे कह सकते हैं जिसमें निष्पक्ष भाव से अपने स्वार्थ के साथ दूसरों के स्वार्थ का भी ध्यान रखा जाता है; स्वतन्त्रता की भावना में एक छोटी सी चिड़िया भी पृथ्वी पर गिरती है तो उसकी ओर भी हमारा ध्यान जाता है; स्वतन्त्रता की भावना उस ईसामसीह की भावना है जिसने लगभग

[शेषांश पृष्ठ ८ परदेखिये]

स्वतन्त्रता

(लेखक—महात्मा श्री भगवान दीन जी)

स्वतन्त्रता क्या है? यह भी कोई सवाल है।

स्वतन्त्रता को सब प्राणी समझते हैं, वह प्राणी ही नहीं, जो स्वतन्त्रता को न समझे। सब प्राणी बोलते नहीं, कुछ ऐसे हैं जो बोल लेते हैं, पर हम सफ़ेद-कागज़-को काला-करने-वाले उनकी बात नहीं समझते, अगर समझते होते तो हम यह जान जाते कि पशु पक्षी 'किसे स्वतन्त्रता मानते हैं?' हमारे लिये सिर्फ आदमी बोलता है, इसलिये हर आदमी, 'स्वतन्त्रता क्या है?' इसका जवाब दे सकता है।

जवाब तरह-तरह के होंगे। ध्यान से देखने पर सब ऐसे मालूम होंगे मानो सब के सब जवाब, मोतियों की तरह, एक डोरे में पिरोए हुये हैं। ऋषियों, ज्ञानियों, महापुरुषों ने 'स्वतन्त्रता क्या है?' इसके उत्तर में जो कुछ कहा है वह ही कब एक है? हम सब इन जवाबों को पढ़ते हैं, आनन्द लेते हैं और गहरे जायं तो एक अर्थ भी पा लेते हैं।

धर्म एक, पर धर्म तो दसियों हैं, पांच छै की गिनती तो बड़े धर्मों में है, फिर भी अनेक आदमी यह कहते मिलते हैं, 'सब धर्म एक हैं, यानी धर्म एक है।'

धर्मों की तरह स्वतन्त्रता एक है।

स्वतन्त्रता एक है, यह बात शायद यों मन में बैठ सके—

स्वतन्त्रता की तड़प सबमें एक सी है। स्वतन्त्रता का अनुभव सबमें एक सा है। स्वतन्त्रता कहने को बाहरी पर है एकदम भीतरी। स्वतन्त्रता किसी तरह नहीं समझाई जा सकती।

सत्य कब किसकी समझ में आया? पर क्या किसी ने उसके समझने की कोशिश छोड़ी?

ईश्वर कब किसकी समझ में आया? पर क्या दुनियाँ उसे खोजते-खोजते कभी थकी?

स्वतन्त्रता मिले या न मिले हम उसके लिये जाने देते रहेंगे, तरह-तरह के दुख भोगते रहेंगे और सब तरह का त्याग करते रहेंगे।

स्वतन्त्रता समझ में आये या न आये, हम यह कहते रहेंगे कि हम यह ख़ूब समझते हैं कि स्वतन्त्रता क्या चीज़ है और उधर स्वतन्त्रता को समझने की कोशिश भी करते रहेंगे।

गाय रस्सी तुड़ाती है। रस्सी मज़बूत होने से अगर न टूट सके और गाय, अपनी ताकत से खूंटा उखाड़ ले और भाग खड़ी हो तो क्या वह यह नहीं समझ बैठती कि वह स्वतन्त्र हो गई? और क्या वह अपनी ऊंची गरदन उठाकर और अपनी बड़ी-बड़ी आंखे मटकाकर खूंटों से बंधी और गायों को अभिमान के साथ

यह कहती नहीं मालुम होती कि देखो मैं स्वतन्त्र हूँ और तुम बंधी हुई हो।

खूँटा उखाड़ कर ले जाने वाली गाय इधर तो और गायों से कह रही है कि वह स्वतन्त्र है और उधर खूँटे से पीछा छुड़ाने के लिये ऐसी जुटी हुई है मानो वह अपने में ही बंधी हुई है।

अच्छा साहब भागते-भागते ज़मीन से रगड़ खा-खाकर या पेड़ों की छाल से घिस-घिस कर कहीं अटक कर उस गाय की रस्सी टूट जाती है। फिर ज़रा उसे देखिये एकदम ऐसे उछलेगी जिस तरह वह जब उछली थी जब वह एक दो दिन की बछिया थी। अगर गाय बोल सकती होती और उस गाय के खुर आदमियों के हाथ जैसे होते तो वह भी कोई झंडा लेकर कूदती-कूदती बाज़ारों में निकलती और यह कहती फिरती—

'मैं पूरी तरह आज़ाद हूँ। मैं पूरी तरह आज़ाद हूँ।' और कब! जब उसकी गर्दन में रस्सी का घेरा ज्यों का त्यों मौजूद है।

आदमी का कुछ ऐसा ही हाल है। हम नहीं समझते आदमी यह कहकर क्या कहना चाहता है!

मैं स्वतन्त्र हूँ चाहे जब सोऊँ।
मैं स्वतन्त्र हूँ चाहे जब जागूँ।
मैं स्वतन्त्र हूँ चाहे जब उठूँ।
मैं स्वतन्त्र हूँ चाहे जहाँ जाऊँ।

यह अपने आपको स्वतन्त्र समझने वाला आदमी कहे कुछ भी पर अच्छी तरह समझता है कि वह कभी नींद में बंधा हुआ है तो कभी जाग में कभी भूख में बंधा हुआ है तो कभी अभाव में, कभी घर में बंधा हुआ है तो कभी देश में। बस बंधा बंधा चिल्ला रहा है—'मैं स्वतन्त्र हूँ।'

कभी कोई भूला भटका यह भी कह बैठता है मैं मरने के लिये आज़ाद हूँ। लोग यह सुन कर हँस देते हैं। क्या बुरा कहता है वह! यही तो कहता है कि वह जिस्म के जेलखाने से भाग निकलने के लिये आज़ाद है। आज़ाद है या नहीं! स्वतन्त्र हुआ या नहीं?

अब कुछ ऋषि, नामी आदमियों की सूझ लीजिये। उनको यह इल्हाम हुआ या ज्ञान हुआ कि जो आदमी अपने जिस्म का जेलखाना तोड़कर भागा वह या तो कुछ दिनों भटकता रहा (देखिये भटकता रहा लफ़्ज़ को ध्यान में रखिये) या उसी से मिलते जुलते जिस्म के किसी और जेलखाने में जा फंसा। फिर वही स्वतन्त्रता की तड़प, वही उसके पा लेने की दौड़-धूप और वही उसके जानने की इच्छा।

अब बँधने और खुलने के सिवा स्वतन्त्रता क्या रह जाती है। दही में घूमनेवाली मथानी अगर दही से यह कहे कि मैं आज़ाद हूँ। दायें-बायें किधर ही को घूमूं, ऊपर-नीचे जब चाहूँ आऊँ-जाऊँ। तो दही सुन लेगा और यही समझेगा कि यह ठीक ही कहती है। उस दही को क्या मालुम कि यह ग्वालिन की कितनी गुलाम है और उसने किस तरह इसकी कमर में रस्सी के दसियों लपेट दे रक्खे हैं और अपनी मर्जी पर

इसको जिधर जाहे घुमाती है और जब चाहें घुमाती है।

जेलखाने का वार्डर स्वतन्त्र है कैदी के लिए। पर वह तो जेलर के हुक्म का बन्दा है और वह खुद ही कौन आजाद है ? वह किसी और का बन्दा है। खुलासा यह कि बन्धन का यह सिलसिला कहीं खत्म नहीं होता। अगर कोई ढीठ बनकर अपने को स्वतन्त्र मान ही ले तो अपनी आदतों की बन्दिश से कहाँ जायगा ?

अब स्वतन्त्रता एक छलावा बन जाती है। दौड़े जाओ उसे पाने के लिए। वह हाथ आने से रही। एक बार मैं बारह वर्ष की उम्र में स्वतन्त्र होने के लिये घर से निकल भागा चौबिस घन्टे स्वतन्त्र रहा और वह मेरी स्वतन्त्रता यह थी कि अपने एक दोस्त के मकान की ऊपर की मंजिल के एक कमरे में बंध गया। बाहर निकलता तो बाप या भाई ढूँढ़ लेते और मेरी स्वतन्त्रता छिन जाती। रही खाने पीने की बात सो घर पर अम्मां से मांगना पड़ता था यहाँ दोस्त या दोस्त की मां से। आ हाहा इस बन्धन मैं खुश था स्वतन्त्रता का रस पी रहा था और उस रस में जो जोर की मिठास थी उसका चाहे मुझे पता न हो पर मेरे अन्तर आत्मा को पता था कि वह मिठास उस दुख का निचोड़ है जो मेरे मां बाप और भाई बहन को मेरे विछोह से हो रहा था।

अब स्वतन्त्रता का अर्थ हुआ अपनी मर्जी का बन्धन।

स्वतन्त्रता की इस कसौटी पर उन महापुरुषों को परख कर देख लीजिये जो जवानी में अपने रिश्तेदारों को छोड़कर भागे। कोई अपनी पत्नी को सोता छोड़ कर चल दिया, कोई आँसुओं से उसके कपड़े भिगो कर चल दिया, कोई किसी तरह और कोई किसी तरह।

एक जगह हमने देखा ऊँट के सिर पर एक लकड़ी बांधी गई थी उस लकड़ी के अगले सिरे पर नीम की एक हरी शाख बंधी हुई थी ऊँट उसे खाने के लिये चलता था दिन भर चलता था पर क्या वह हाथ आती थी ? पर इस तरकीब से तेली ऊंट से सरसों पिलवा लेता था और ऊँट को हांकने के लिए उसे आदमी नहीं बिठाना पड़ता था। प्रकृति देवी ने अपने आप को बेहद चलाक समझने वाले आदमी से जी तोड़ काम करने के लिये उसमें स्वतन्त्रता की इच्छा पैदा कर दी है। बस वह चालाक आदमी इसी को पाने के लिये ज़मीन आसमान एक करता रहता है और कोल्हू के ऊंट की तरह प्रकृति देवी का तेल पेरने के सिवाय कुछ नहीं कर पाता। जिस तरह ऊंट को तेल पेल चुकने के बाद वह हरी शाख खाने को दे दी जाती है और चारा भी मिल जाता है और ऊंट समझता है कि यह सब उसकी दौड़ धूप का फल है वैसे ही आदमी प्रकृति देवी की नौकरी पूरी तरह बजा कर ऐसा मालुम करने लगता है कि उसने स्वतंत्रता पाली और प्रकृति देवी की दी हुई प्रसिद्ध को भी वह यही समझता है कि वह उसी

ही कमाई हुई है। उस तरफ उसका ध्यान ही नहीं जाता कि कितनों की प्रसिद्धि छिन चुकी है और आये दिन छिनती रहती है और कितनों की आये दिन छिनती रहेगी।

स्वतन्त्र होने की कोशिश से कभी किसी को छुट्टी नहीं मिलेगी। कभी कोई बाज नहीं आयेगा। स्वततंत्रता रूपी छलिनी की चाल से बच तो कोई सकता नहीं समझ ले इतना बस है। बिना समझे स्वतन्त्रता बन्धन बन बैठेगी।

पशु पक्षियों में स्वतन्त्रता बन्धन बनी हुई है। यही हाल अनगिनत आदमियों का है। दुनियाँ में बहुत कम ही ऐसे हैं जो सिर्फ बन्धन को बन्धन मानते और स्वतन्त्रता को बन्धन नहीं।

स्वतन्त्रता पर जब जब आदमी छाया रहता है वह स्वतन्त्र समझा जाता है।

स्वतन्त्रता जब आदमी पर छा जाती है तब वह स्वच्छन्द कहलाने लगता है। और अपने और समाज दोनों के लिये भयानक प्राणी बन बैठता है।

स्वतन्त्रता का मुक्ति नाम वाला रूप दुनिया के काम का नहीं। उसमें गहरे जाने की ज़रूरत!

विचार-बिन्दु

विद्या

[श्री बीरबल]

विद्या ?
वि + दया.
वि + दया ?
विशेष दया ?
विस्तार दया ?
विश्वमयी दया ?
विद्या = विश्वमयी दया,
विश्वमयी दया ?
प्रेम,
प्रेम ?
अहिंसा,
अहिंसा ?
प्रेम,
प्रेम ?
आत्मा,
आत्मा ?
सच्ची स्वतंत्रता,
सच्ची स्वतंत्रता ?
प्रेम,
प्रेम = अहिंसा
स्वतंत्रता = अहिंसा,

हमें आन्तरिक स्वतंत्रता चाहिये

(ले०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, दर्शन-केसरी, विद्या-भास्कर)

स्वतन्त्रता दो प्रकार की होती है—बाह्य अर्थात् ऊपरी दृष्टि से बन्धन-मुक्ति। भारत पर ब्रिट्रिश राजनैतिक सत्ता थी, किन्तु अब उस बाह्य सत्ता के हट जाने से राजनैतिक दृष्टि से भारतीय स्वतन्त्र हो गये हैं। किसी विदेशी सत्ता की हुकूमत अब हमारे ऊपर नहीं है। भारत ने राजनैतिक आज़ादी (बाह्य स्वतन्त्रता) वर्षों के कठिन संघर्षों के उपरान्त प्राप्त कर ली है। बाह्य दृष्टि से हम मुक्त हैं।

आन्तरिक स्वतन्त्रता क्या है ?

दूसरी स्वतन्त्रता आन्तरिक है। आन्तरिक स्वतन्त्रता से हमारा तात्पर्य उन परतन्त्रता, निकृष्टता, आत्महीनता के विचारों से मुक्त होना है, जो चिर-कालीन गुलामी के कारण हमारे गुप्त मन में जटिल भावना ग्रन्थि (Complexes) बन कर रह गये हैं। हम अपने आपको कमज़ोर दीन-हीन जाति मानने लगे हैं। हम युग से पीछे रह गये हैं। अंधविश्वास दकियानूसी धारणाएँ। आत्महीनता (Inferiority Complexes) की कुत्सित पोच विचारधाराएँ हमारे अन्तर मन में बैठ गई हैं। हमारी बुद्धि में वह ताज़गी और आज़ाद ख्याली नहीं रही है जो एक स्वतन्त्र जाति में होनी अनिवार्य है। हम ग़लत शिक्षा हीन, बनानेवाली पुस्तकों, भोगवाद, की छाया में पल रहे हैं। इस वातावरण में भारतीय युवक की सर्वोच्च मानसिक शक्तियों का विकास संभव नहीं है।

मनोराज्य वह सूक्ष्म सत्ता है, जहाँ क्षण-क्षण में संसार के महान् साम्राज्य निर्मित एवं धराशायी होते रहते हैं। मन की स्वतन्त्रता की अद्भुत अजेय शक्ति द्वारा विश्व में स्थायी प्रेम, सत्य, अहिंसा, सहयोग का प्रेम-साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

आज का शिक्षित कहलाने वाला युवक एक आन्तरिक अज्ञान का शिकार है, जो भोगवाद और सांसरिकता ने उसे दिया है। इसके कारण आज का मानव अतृप्ति, स्वार्थ, ईर्ष्या, निष्ठुरता, दंभ, अहंकार की भट्टी में जल रहा है। युग नहीं बदलते। युगों को बनानेवाला मानव बदलता है। मनुष्य की विचार धारा में परिवर्त्तन होने का नाम ही युग परिवर्तन है। जैसे-जैसे युग की गुलाम विचारधारा बदल कर आन्तरिक आज़ादी के तरफ बिकसित होंगे, वैसे-वैसे मानव जाति और आधुनिक समाज की उन्नति और विकास होगा।

आत्महीनता के भाव दूर कीजिए!

बाह्य स्वतन्त्रता आन्तरिक आज़ादी प्राप्त करने के लिए एक प्रवेशद्वार है। यदि हमें राजनैतिक आज़ादी हासिल हो गई है, तो हमें इसी को सब कुछ मानकर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, वरन् इस भावी उन्नति, विकास, परिपक्वता, का साधन समझना चाहिये। स्वतन्त्र व्यक्ति का निर्माण करना हमारा प्रथम पुनीत कर्तव्य है।

मन से आत्महीनता; कमज़ोरी, दुर्बलता के तमाम विचारों को हटाकर आत्म निर्भरता, मौलिकता, धैर्य, निर्भीकता सौभ्य मनुष्यत्वादि गुणों को विकसित करना ही आन्तरिक आज़ादी की ओर अग्रसार होने का मार्ग है।

दुर्बल को सब मारते हैं। "दुर्बल-देवो घातकः। दुर्बल सबलों का आहार है। बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है। बड़े वृक्ष अपना पेट भरने के लिए छोटे पौधों की खूराक झपट लेते हैं। बड़े कीड़े छोटों को खाते हैं। गरीब लोग अमीरों द्वारा शोषित होते हैं। अतः तुम दीन-हीन मत बनो। कमज़ोरी और बुज़दिली के विचार मनों मंदिर से वाहिष्कृत कर दो। नई पीढ़ी को सतर्क रहकर बल-वान् साबित करना है।

भारत आज़ाद है, तो आज़ादी के साथ आने वाली कठिनाइयाँ भी उसके साथ हैं चोर, गठकटे, ठग, मज़बूत राष्ट्र, उचक्के अपना-अपना दाँव देख रहे हैं। ढोंगी मुफ्तखोर अकारण ही झगड़ा करने को प्रस्तुत हैं। इस वातावरण में हमें अपने अन्तर में व्याप्त जो गुलामी की जड़ें हैं, वे बाहर निकाल फेकनी हैं। केवल बलवान व्यक्ति ही इस दुनिया में आनन्दमय जीवन व्यतीत करने का अधिकारी है। जो निर्बल, अकर्मण्य, हीन स्वभाव हैं वे आज नहीं तो कल किसी न किसी प्रकार दूसरों द्वारा चूसे जायँगे और आजादी से वंचित कर दिये जायँगे।

जिन्हें अपने स्वभाविक अधिकारों की रक्षा करते हुए सम्मान पूर्वक जीना है, उन्हें आन्तरिक आज़ादी अवश्य प्राप्त करनी चाहिए।

[पृष्ठ २ का शेषांश]

२००० वर्ष पूर्व मानव जाति को वह पाठ पढ़ाया था जो उसने कभी नहीं पढ़ा था और जो फिर कभी विस्मृत नहीं किया गया है—और वह पाठ यह था कि ऐसा राज्य संभव है जहाँ निम्नतम की बात भी उसी प्रकार सुनी और समझी जायेगी जैसी उच्चतम की।" ×

—जजलर्नेड हैण्ड

× अमेरिका के एक प्रमुख न्यायशास्त्री जज लर्नेड हैण्ड द्वारा न्यूयार्क में दिये गये भाषण का कुछ अंश। 'अमेरिकन रिपोर्टर' के सौजन्य से।

मुक्ति का भिखारी*

[रचयिता—श्री धन्यकुमार जैन "सुधेश"]

'चाँदन' के महावीर !
जन जन के महावीर !!
त्रिभुवन के महावीर !!!
मौन क्यों हुये आज
वेदिका में विराज
नयन ये खोलो भी
और कुछ बोलो भी
देखो तो मेरी ओर,
हर्ष में हो विभोर
भक्ति की ले हिलोर
आया हूँ आज मैं
शरण में तुम्हारी
बनकर पुजारी
नहीं ! नहीं !!
बनकर भिखारी।
किन्तु नहीं उनसा
मागते जो तुमसे
मनोज सी काया
कुबेर सी माया
सुन्दरी रति समान
या कि एक संतान
किन्तु मैं तुमसे
माँगूगा नहीं नाथ
देह की कुशलता
सिंह सी सबलता
क्योंकि नाशवान तन
व्याधियों का सदन
बनेगा एक दिन
चिताग्नि का ईंधन
देव !
अतएव तन—
सुख नहीं चाहिये
और नहीं चाहिये
स्वर्ण, धन, धान भी,
भवन, उद्यान भी,
कार, नभयान भी
रेडियो के गान भी
इत्र तैल पान भी
क्योंकि क्षणभंगुर ये
पाप के अंकुर ये
करते हैं चित्त को
चिन्ता से आतुर ये
देखने में यद्यपि
भासते मधुर ये
किन्तु कर देते हैं
मानव को
सुर से
असुर ये।
अतएव भौतिक—
पदार्थ नहीं माँगता

---

*यह रचना सन् १९४६ की तीर्थ यात्रा में चाँदनपुर की धर्मशाला में लिखी गई थी।

और नहीं माँगता
प्रेमिका के भुजपाश
काम-उद्दीपक
हरे भरे मधुमास
वासना की तीव्र प्यास
रति-केलि औ' विलास
प्रति क्षण
प्रेयसी का सहवास
किलोल या कि लोल हास
क्योंकि ये विषय-भोग
शहद से सनी हुईं
पैनी कटार हैं
अमृत के रूप में
विष की धार हैं
और कर्मराज मोह
के आधार हैं
मध्य लोक में बने
नर्क के द्वार हैं
सेमर के पुष्पवत्
सर्वथा असार हैं
तृप्ति कर हैं न, पर
बढ़ाते संसार हैं।
अतएव
वीतराग !
चाहता न भोग-राग
और नहीं चाहता
गोद में खिलाने के
हेतु सन्तान भी
क्योंकि देव ! वह भी
'स्व' से उत्पन्न हो
बनती अवश्य 'पर'
और जो बने 'पर'
रहे नहीं 'मेरी'
आज से अनन्त तक
वह नहीं चाहिये
और ऐसी वस्तु इस
लोक में है नहीं
वह त्रिलोक से परे
कल्पना गम्य है।
किन्तु नाथ ! तुम हो
इसके अधिकारी
इसीलिये
आया हूँ
आज मैं
शरण में तुम्हारी
बनकर भिखारी
देने यदि कहो तो
व्यक्त मैं करूँ अब
अपनी कामना
अपनी भावना
वह यही
कि हे प्रभो
मेरे ही समान
अनेकों अनजान
आत्माएँ
बद्ध हो तन में
पड़ी कर्म-बन्धन में
भूल कर मुक्ति-पथ
त्याग कर धर्म-रथ
भटकतीं भव-वन में
हैं वे पराधीन
महादीन
दुःखलीन
सुख विहीन
उन पर हैं बन्धन
निज के

पर के
काल के
क्षेत्र के
देश औ' राज के
जाति औ' समाज के
कुछ पूर्व-आगत
और कुछ आज के
ये सब बन्धन
टूट कर चूर-चूर
जा गिरें दूर-दूर
और फिर
मुक्त हर देश हो
मुक्त हर प्रान्त हो
मुक्त हर ग्राम हो
मुक्त हर धाम हो
मुक्त हर व्याधि हो
नर और नारी
वृद्ध और बच्चे
पशु और पक्षी
वृक्ष और पौधे
लता, तृण, कण-कण
मुक्त हों ये सब
और मुक्ति के प्रति
हरेक में भक्ति हो
हरेक में शक्ति हो
कि पा सके वह मुक्ति-पथ
पा सके वह धर्म-रथ
और चल सके वह
आप तक आने को
मुक्ति-पद पाने को
है यही कामना
निज की
पर की
देश की
लोक की
मुक्ति की भावना
और नहीं कोई
भौतिक-लालसा
मुक्ति के विहारी
इसीलिये
आया हूँ आज मैं
शरण में तुम्हारी
बनकर
मुक्ति का भिखारी
हो रही आशा
देख तब मुद्रा
भोली
इसीलिये
माँगता हूँ मुक्ति-भीख
भक्ति वश ही पसार
चित्त की झोली
इस प्रकार
तव प्रिया माँगकर
करता हूँ नहीं
तुमसे ठिठोली
वास्तव में मुझे
मुक्ति ही चाहिये
हे उदार !
निर्विकार !!
कृपागार !!!
बार-बार
कर-कर मैं नमस्कार
माँगता हूँ मुक्ति भीख
हो तुम्हें स्वीकार तो
कहदो "तथास्तु" बस।

गेटे की कृतियों में अहिंसा, सत्य और स्वाधीनता

[ले०—श्रीमती क्लैरीसा ट्वाइले—जर्मनी की एक सुप्रसिद्ध लेखिका]

यह सम्भव हो सकता है कि यूरोप के मध्यदेश जर्मनी के कवि-सम्राट गेटे (Goethe) ने अहिंसा का नाम भी न सुना हो; किन्तु यह अवश्यम्भावीतथ्य है कि वह इस बड़े और महत्वपूर्ण विचार के आन्तरिक अर्थ (अथवा महत्व) को समझता था। अतः बुद्धिमानों के बुद्धिमान (Weisen von Weisen)—(अर्थात् गेटे) की रचनाओं में कोई ऐसी बात पाना सम्भव है जो अहिंसा के महान् आदर्श से सम्बन्धित हो। क्या उनकी 'इफीजेनी'(Iphigenie) अहिंसा की नायिका नहीं है? वह अपनी, अपने भाई और मित्र की जीवन-रक्षा की समस्या को अहिंसात्मक साधनों से सुलझाती है। और इसी प्रकार उनका एक पात्र विलयम मेस्टर (Wilhelm Meister) अहिंसा, अपरिग्रह और दृढ़ आत्म-संयम के मार्ग पर चलने के कारण हमारी सहानुभूति प्राप्त करता है। इस तरह के महत्व, दूसरे शब्दों में अहिंसा के हैं। इसी कोटि का नायक 'वाल-फर वाण्ड्शैफिन' (Wahlverwandtschaften)* में एडवर्ड (Eduard) है। गेटे के चरित्रों का सम्पूर्ण प्रेम उनके अपने व्यक्तित्व पर अधिकार पाने की शक्ति से उद्भूत (या उत्साहित) हुआ है। जर्मनी के कुछ साहित्य-प्रेमी, 'बीफ्रेउङ्स्क्रेगे' (Befreiungskriege)(स्वातंत्र्य समर)§ जो कि नैपोलियन के विरुद्ध सन् १८१३ में हुआ था, के दरमियान में गेटे का रुख भूल नहीं सकते। गेटे उस समय में शान्त था। वह शान्त था, क्योंकि वह किसी को न मारने की दैवीय व्यवस्था को जानता था। वृद्ध गेटे जानता था कि जीवों की जान लेने की अपेक्षा सुरक्षा करना उत्तम है। इस भाँति जर्मनी का महान् पुत्र गेटे पुरातन भारत और मानवता के आदर्श अहिंसा का अनुगामी था। उसके 'वनस्पति रूप विज्ञान'* के अध्ययन करने पर पाठक समझेगा कि उसने उन सिद्धान्तों की व्याख्या

---

*गेटे की एक रचना जिसका अर्थ 'चुनाव की एकताएँ' (या Elective Affenities) है।

§Liveration war.

*Morphology of Plants;

जर्मन कवि सम्राट गेटे

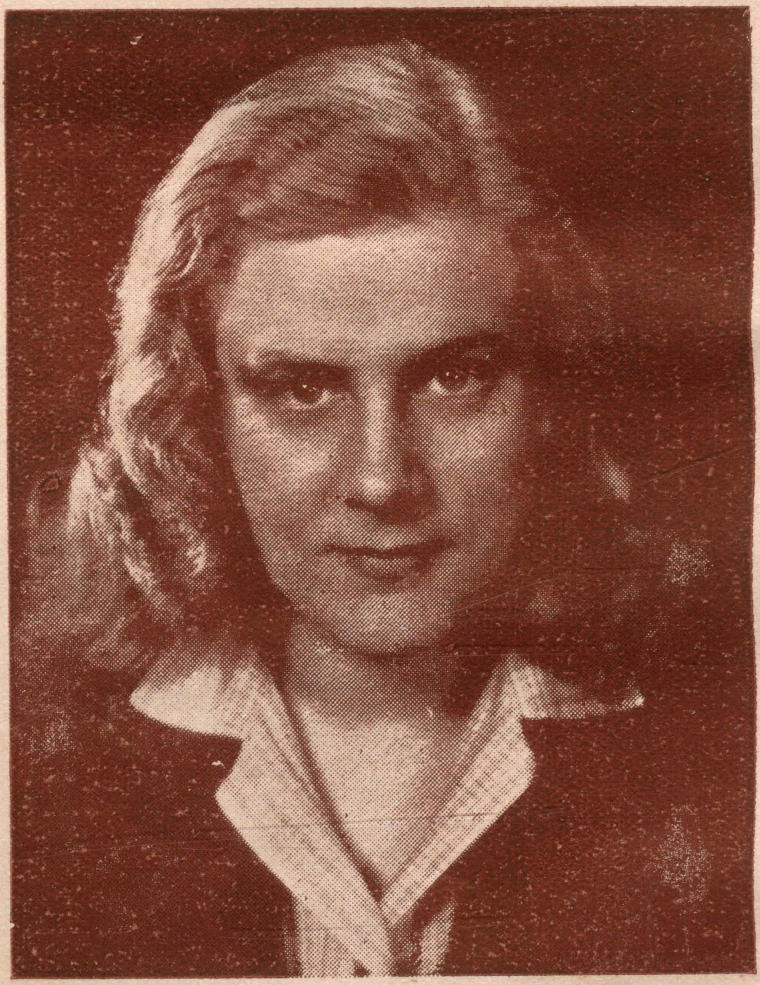

जर्मन-लेखिका

श्रीमती क्लैरीसा ट्वाइले

की है जो समाजों को सशक्त कर सकते हैं। यह, सामाजिक शक्ति द्वारा—पशु-हनन-बल द्वारा नहीं, वरन् पौदों की अहिंसा द्वारा ही हो सकता है। गेटे की अहिंसा को समझने के लिए 'वनस्पति रूप विज्ञान' को पढ़ना चाहिए। गेटे ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए अहिंसा मार्ग को ही अपनाया है। घृणा और हिंसा के मार्ग को नहीं : "राष्ट्रीय घृणा सर्वथा ही"—एक बार गेटे ने लिखा—"कोई विचित्र वस्तु है। आप इसे वहाँ सदैव सबल एवं अतिप्रबल (या भयानक) पाएँगे जहाँ संस्कृति का अभाव-सा है (या वह कम अंशों में है) किन्तु जहाँ (संस्कृति) है वहाँ से यह (घृणा) नितान्त विला जाती है। और वहाँ मनुष्य राष्ट्रीयता से कुछ ऊँचा उठकर खड़ा होता है तथा अपने पड़ोसी राष्ट्रों के हिताहित को इस प्रकार अनुभव करता है जैसे अपने ऊपर ही बीती हो। संस्कृति का यह स्तर मेरी (गेटे की) प्रकृत्यानुकूल था और मैं बहुत पहले जब ६० साल का हुआ, बलवान हो गया था···"

अहिंसा की बहिन सत्य है और सत्य स्वाधीनता का दूसरा पहलू है। परन्तु गेटे का सत्य-पथ इस प्रकार के विश्वास करने का विचार नहीं है कि 'मैं आन्तरिक जगत में सत्य रखता हूँ—जो कि पर्याप्त है।' पर, वह है सक्रिय होने का जिससे कि सत्य प्राप्त किया जा सके। तुच्छ लोग कितनी अतिशयोक्ति करते हैं तथा कहते हैं कि उनकी कृतियाँ, उनकी रचनाएँ केवल उनके ही प्रातिभ-ज्ञान (Intuition) में पाई जाती हैं। गेटे का रुख सत्य से शासित है। अतएव वह बहुत ही स्वाभाविक ढंग से कहता है कि बड़े-बड़े आदमियों को भी दूसरों की बुद्धि से कुछ उधार लेना पड़ता है :

"असाधारण धीमान भी बहुत दूर तक नहीं गए, उन्होंने अपनी अन्तरात्मा के लिए प्रत्येक वस्तु उधार लेने की कोशिश की। किन्तु बहुतेरे अच्छे व्यक्तिओं ने इस पर विचार नहीं किया और उन्होंने मौलिकता के स्वप्न को लेकर आधे जीवन तक अन्धकार में टटोला। मैं, किसी भी तरह, अपने काम को अपनी ही बुद्धि-मत्ता का श्रेय नहीं देता हूँ, प्रत्युत अपने निकट की बहुत सी वस्तुओं तथा व्यक्तिओं को (श्रेयदेता हूँ) जिन्होंने कि हमें कुछ मशाला दिया है। मूर्ख और महात्मा, विशाल मस्तिष्क वाले और संकुचित, शैशव, जवानी और बुढ़ापा—सब ने मुझे बताया कि उन्होंने क्या अनुभूति की, उन्होंने क्या सोचा, उन्होंने कैसे जीवन यापन किया, क्या काम किया, उन्होंने क्या अनुभव प्राप्त किए? मेरे पास आगे कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि मैं अपना हाथ उस पर रखूँ और उसे लुनूँ (या काटूँ) जिसे

कि और लोगों ने मेरे लिए बो रखा है…।"

एक मनुष्य, एक अपूर्व बुद्धिमान व्यक्ति, जिसने ये पंक्तियाँ लिखी हैं—यथार्थ जगत में रहता है वह एक विचारक एवं सत्य-खोजी व्यक्ति है। परन्त, बहुत से व्यक्तियों का अस्तित्व इसीलिए है कि उन्होंने वह प्रणीत किया जो कि दूसरों ने प्राप्त किया है और जो उनका अपना कार्य घोषित किया गया। 'सत्यमेव जयते' वैदिक वाक्यांश है तथा गेटे इसकी आन्तरिक वास्तविकता का गवाह है। गेटे का नव युवक नायक गेज़ (Goetz) सत्य की खोज में था। फाँस्ट (Faust) भी सत्यान्वेषी है किन्तु गेटे का सत्यान्वेषण कार्य सजीव है क्योंकि सत्य और स्वतंत्रता व्यक्ति को स्वयं अपने कार्य एवं श्रम से प्राप्त करने होते हैं।

अब सत्य और स्वतंत्रता का दूसरा क्षेत्र लीजिए। जिस प्रकार सत्य पाया जाता है उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त की जाती है। एक बार गेटे ने ये पंक्तियाँ लिखीं हैं :

'वह ही केवल पाता रखता,
निज जीवन औ' निज स्वतंत्रता।
जिसको है नए सिरे से ही,
जीतना इन्हें प्रतिदिन पड़ता।'*

क्या कभी कोई इससे भी भली प्रकार व्यक्तित्व-विनिर्माण-विधि बता सका है? गेटे के गेज़ के समान सभी स्वतंत्रता नायक न केवल भौतिक स्वतंत्रता-फल के ही अन्वेषक हैं वरन् वे आन्तरिक, मानसिक और आत्मिक स्वाधीनता-रत्नों के खोजी अधिक मात्रा में हैं। इस प्रकार गेटे की कृतियों में स्वाधीनता सत्य का ही दूसरा पहलू है। वह भले ही इफीजेनी (Iphigenie), टैसो (Tasso), गेज़ (Goetz) या विलियम मेस्टर (Wilhelm Meister) द्वारा प्राप्त किया गया हो।

अतः गेटे का जीवन और रचनायें उन पाठकों के लिए सुंदर उपहार हैं जो अहिंसा, सत्य और स्वतंत्रता की त्रिवेणी से प्रेम करते हैं।

अनुवादकः—वीरेन्द्र प्रसाद जैन

---

*"He only gains and keeps his life and freedom
Who daily has to conquer them anew....."

दो गीत—] [—श्री रतन पहाड़ी

(१) युग-जागरण

हमने अपना लहू सींच यह भारत का दिन देखा है।
अरमानों में आग लगा दी बलिदानों मे भूमि पाट दी,
अपने जीवन की सांसों से हमने युग को गति ही गति दी,
फूल खिले बगिया में आखिर फिर बसन्त छाया उस पर,
शोभा मदमाती सी आई जीवन रंग लाया उस पर;
हमने अपने भाई के भी शीष लुढ़कते देखे हैं,
हमने अपने भाई भी फाँसी पर चढ़ते देखे हैं,
हमने देखा जलियाँवाला बाग खून से भरा हुआ,
भगत सिंह का सिंह देह भी कभी कफन से बँधा हुआ,
तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई, नाना की कुर्बानी क्या ?
भारत का इतिहास भरा है भूलेंगे हम उनको क्या ?
अरे, सैकड़ों लोगों को फांसी पर चढ़ते देखा है,
अरे, सैकड़ों बच्चों को भालों से छिदते देखा है,
अरे, सैकड़ों बुड्ढों को पेटों से चलते देखा है;
खून-खून के छींटों से इतिहास बदलते देखा है। हमने अपना लहू···
अगणित घटनाएँ घटतीं हैं किन्तु असर सबका होता है,
क्रान्ति द्रोह-विद्रोह देश में किन्तु समय सबका होता है,
कली-कली कचनार गुलाबी फूल प्रफुल्लित डाली-डाली,
मन्द समीरण में बह बहकर खिली साध में पलने वाली,
कली बन्द कोषों में रह रह हिल हिलकर आखिर कहती है
हमें फूल बनने दो यह तो जन्मसिद्ध अधिकार हमारा।
हम जकड़े जंजीरों में थे जंजीरों को सदा कोसते,
सत्याग्रह काले पानी जेलों को हम भरते रहते
किन्तु हमारा ध्येय एक था हम स्वतन्त्र अधिकार हमारा,
गाँधी की जय माता की जय इन्क्लाब का केवल नारा।
अब स्वतन्त्र हम देश हमारा राज्य हमारा तन्त्र हमारा
भूमि हमारी प्रजा हमारी कण-कण औ' आकाश हमारा।
झोपड़ियों से आग ताप यह दिवस आज का देखा है। हमने अपना लहू···
आज तलक माताएँ अपने मृत शिशुओं की थीं चिता सजातीं,
आज तलक पत्नी भी अपने पति शहीद को माल पिन्हातीं,

नवीन जागरण हुआ नया नया विहान हो।
प्रभात की नई किरण नवीन रश्मियाँ लिए,
समूल नष्ट तोम का निशान राष्ट्र के लिए,
कि साधना मिली खिली सुपंखुड़ी प्रभा लिए,
कि भावना प्रभात की स्वतन्त्र देश के लिए,
स्वतन्त्र देश राष्ट्र आज पूज्य हो महान् हो। नवीन जागरण…
हिमाद्रि श्रंग से अशेष ज्योति की दिशा खिली,
उफान सिन्धु से नई विभा मिली; प्रभा मिली,
कि छार छार दासता स्वदेश की हुई हुई
कि भेद भाव से खिली यह पंखुड़ी गिरी गिरी
स्वदेश की नई दिशा स्वतन्त्र हो स्वतन्त्र हो। नवीन जागरण…
अशेष शीष दान से कि कोटि कोटि जान से,
कि मान से औ भान से गरीब की पुकार से,
खुले कपाट आज राज देश के सुराज के,
कि अघर्य भी चुका, बिकी गरीब देश की हया;
परन्तु देश की पतन-निशा नितान्त म्लान हो। नवीन जागरण…
मिली दिशा निशा हिली महार्ध्य पर पड़ी पड़ी
कि आज लाल लाल को निहारती है मां खड़ी
मिला था रक्त कण मगर मिला न लाल का निशां
कि हार, हार रह गई मिली न प्रीति की दिशा
कि मातृप्रेम का नया प्रमाण आज दान हो। नवीन जागरण…

बुड्ढे बच्चे नर-नारी सब जन-गन-मन अधिनायक की जय,
सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां विजयी विश्व तिरंगे की जय,
सब कुछ छिन सकता है हमसे बन्दे मातरम् नहीं छिनेगा,
मरते दम तक 'जय-भारत', 'जय-गांधी', 'जय-माता' निकलेगा,
पर स्वतन्त्रता की सांसों ने एक और करवट बदली,
गांधी पथदर्शक उद्धारक बापू की बलि भी होली,
सिसक-सिसक हिचकी-हिचकी ले हमने झण्डा फहराया,
वर्ष-गाँठ भारत स्वतन्त्र की बिना वर्तिका दिया जलाया,
भूख प्यास में पल-पल कर यह दिवस आज का देखा है,
टुकड़े टुकड़े के लाले सह दिवस आज का देखा है। हमने अपना लहू…

रूपक

सच्चा स्वातन्त्र्य

(ले०—वीरेन्द्र प्रसाद जैन)

पात्र-परिचय

वासना—एक सुन्दरी युवती	सम्राट—कुमार स्वतंत्र के पिता
कुब्जा—वासना की सहेली	सुमतिबाई—स्वतंत्र की बहिन
स्वतंत्र—राजकुमार	मन्त्री एवं प्रजाजन आदि

(प्रथम दृश्य)

स्थान—सजा हुआ कक्ष ।

[कक्ष में केवल वासना और कुब्जा हैं । वासना गाती है, कुब्जा वाद्य-वादन करती है।]

(गीत)

कौन नहीं तैयार, करने को अभिसार ?
मुझमें कितनी मादकता है,
मुझमें कितनी सुन्दरता है;
कौन न देगा प्यार ?
कौन नहीं तैयार, करने को अभिसार ?
मेरा यौवन मदमाता है,
रूप-सुधा-रस छलकाता है;
कौन न हो निउछार ?
कौन नहीं तैयार, करने को अभिसार ?
मेरे रूप-कुसुम पर रीझे,
मनुज-मधुप फिरते है खीझे;
कौन न माने हार ?
कौन नहीं तैयार, करने को अभिसार ?

[गीत की समाप्ति के साथ वाद्य-वादन भी समाप्त होता है ।]

कुब्जा—(मुस्काती हुई सी) वासने ! सच कहती है । तेरी सुन्दरता के आगे गुलाब की मोहकता, कमल की कमनीयता और तितलियों की लावण्यता सब कुछ तुच्छ हैं । तेरा इठलाता हुआ यौवन किसे न मोह लेगा ? तेरी उन्माद-पवन के मादक झोके खाने को कौन न विह्वल होगा ?

वासना—परन्तु ..... (रुक जाती है)

कुब्जा—रुक क्यों गई ? परन्तु-किन्तु क्या ? कहो न !

वासना—जब से कुमार स्वतंत्र को देखा है, हृदय में एक कसक टीसती रहती है। कुमार का भरा हुआ वक्षस, उन्नत भाल, बड़े-बड़े नेत्र, सस्मित चेहरा, सुगठित शरीर और वह वक्तृत्व कला आदि सब गुण नेत्रों के समक्ष नाचते रहते हैं।

कुब्जा—तो उसको वंश में करना कौन-सी बड़ी बात है ? वह तरुण है। तरुणाई में, वासने; तुझे—तेरे मधुमय सौन्दर्य-वैभव को, यदि स्वतंत्र एक बार भी देखले तो बिना लुभाए नहीं रह सकता। तरुणाई में किसे रँगरेलियाँ नहीं सूझती ? यदि कुमार ने तेरा कहीं संगीत सुन पाया तो तेरे ऊपर वे बिना पागल हुए नहीं रह सकते !

वासना—सुना है, आज स्वयं सम्राट ने उन्हें बन्दी बनाने की आज्ञा प्रसारित कर दी है।

कुब्जा—तो क्या हुआ ? वह अपने पुरुषार्थ से निकल आएँगे ? मैं तुम्हें उनके वैसे भी मिला दूँगी। लोभ और आकर्षण से कौन बचा रहता है ?

[पट परिवर्तन]

× × × ×

द्वितीय दृश्य

स्थान—राज दरबार।

[राजकुमार बन्दी बनाकर लाए जाते हैं। उनके पीछे जनता कोलाहल करती उमड़ी चली आ रही है।]

राजकुमार—(कुछ रुककर तथा पीछे मुड़कर) नागरिक-वृन्द ! अब आप शान्त रहें। राजाज्ञा का पलन करना हमारा परम कर्तव्य है।

(कोलाहल शान्त हो जाता है। कुमार आगे बढ़कर सम्राट को प्रणाम करते हैं।)

सम्राट—(लज्जापूर्वक) स्वस्ति वदन। (कुछ रुककर कहने लगते हैं) कुमार स्वतंत्र ! आज तुम्हें मैं अपनी ही आँखों के आगे ही परतंत्र देखता हूँ। तुमने मेरे होते हुए भी मेरी वंश-परम्परा को लजा दिया। कुल पर कलंक लगा दिया।

कुमार—मैं स्वतंत्र हूँ और सदा रहूँगा। आप मेरे पार्थिव शरीर को भले ही बँधा हुआ देख लें; परन्तु, मन से यह स्वतंत्र सदा स्वतंत्र है और रहेगा। उसे परतंत्र बनाने का किसमें साहस ? किसमें क्षमता ?

मैंने अपना कर्तव्य किया, आप इसे कुल-कलंक समझें तो समझें।

सम्राट—यदि तुम्हें बन्धन में ही आनन्द है, तो क्या कहूँ? मैंने यह सब कुछ तुम्हारे लिए ही किया था। मेरा क्या? मैं तो बुद्धा हुआ। तुम्हारे लिए पृथक प्रासाद निर्मित करने का अनुष्ठान कर मैंने महापाप किया। अपने पैरों में अपने आप कुल्हाड़ी मार ली।

कुमार—मेरे लिए नहीं, हरगिज नहीं। मैं अपने सुख के लिए अपने निर्धन प्रजा-जनों की झुपड़ियाँ उजड़वाकर गगन चुम्बी प्रासाद स्वप्न में भी नहीं बनबाना चाहता। मुझसे यह निष्ठुरता, निरंकुशता, पाशविकता कदापि नहीं हो सकती!

सम्राट—तो फिर मैं ही क्यों यह सारा करूँ?

कुमार—यह आप समझें। दीनों की झुपड़ियों को उजड़वाकर महल बनबाना महा अन्याय है। गरीबों की पसीने की कमाई पर मस्ती काटना मुझे नहीं भाता।

सम्राट—अच्छा·····तो·····जो समझो, अब तुम्हीं करो। मेरी वाणी में इतना बल नहीं कि अब तुम्हें कारावास तक भेजने की आज्ञा दे सकूँ। मन में आए वह करो। लो, मैं जाता हूँ; अब दरबार में पैर भी न धरूँगा। मैं अब प्रासादों में ही जिन्दगी काटूँगा। तुम्हें जो रुचे वह करो। प्रहरी! बन्धन खोल दो। स्वतंत्र को स्वतंत्र कर दो।

[प्रहरी बन्धन खोलता है सम्राट चला जाता है। प्रजा-जन जय-जय नाद करते हैं]

प्रजा-जन—'सम्राट की जय!' 'राजकुमार की जय!'

[कुमार बन्धन मुक्त होने पर पिता के चरण-कमलों में गिर पड़ते हैं।]

कुमार—(सँभलकर) क्षमा चाहता हूँ, पिता जी क्षमा!

सम्राट—(रुद्धकण्ठ में) क्षमा! (सम्राट कुमार को हृदय से लगा लेते हैं। नेत्रों से अश्रु गिरते हैं। सम्राट चल देते हैं)

कुमार—प्रहरी, जाओ महाराज को भवन तक भली प्रकार से पहुँचा आओ। बाहर रथ सुसज्जित-सा खड़ा प्रतीत होता है।

(सम्राट जाते हैं। सब जय-जय घोष करते हैं।)

कुमार—(सम्राट को द्वार तक पहुँचा आने के पश्चात) मन्त्रिवर! आज से आप प्रमुख नागरिकों की सलाह से राज्य कार्य करिए। इतना बढ़ा हुआ राज्य-कर कम कर देना समुचित होगा—ध्यान रखिए।

(नागरिकों की ओर)

नागरिको! अब राज्य-भार आपके ही हाथों में है। अब आपका ही राज्य है, आप इसे सँभालें! जैसा चाहें वैसा करें।

मेरे प्रिय नागरिको ! एक विशेष बात ध्यान में रखने की है कि सच्चे, ईमानदार चरित्रवान प्रजा-जन ही राज्य की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। राज्य का टिकाऊपन, जनतंत्र में उन पर ही होता है। अस्तु, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार से समझेंगे।

आप लोगों में से सभी वर्ग के प्रतिनिधि लिए जायेंगे।

[सब ओर से करतल ध्वनि होती है। जय-जयकार होता है। वादित्र बजने लगते हैं]

कुमार—अब आप लोग शान्त होकर अपने-अपने घर चले जाएँ। आप लोग प्रत्येक वर्ग में से दो-दो व्यक्ति अपने-अपने प्रतिनिधि चुनकर मन्त्रणा के लिए मन्त्रिवर के सहयोगी के रूप में भेज दें। शेष कुछ विद्वान लोगों से भी सक्रिय योग लिया जायगा। अब आप लोग जा सकेंगे। आगे की कार्यवाही का हमें ध्यान रखना है।

(नागरिक वृन्द उत्साह से 'राजकुमार की जय'—जय-जय नाद करते प्रास्थान करते हैं। पट परिवर्तन होता है।)

× × × × × ×

(तृतीय दृश्य)

स्थान-उद्यान

[कुमार स्वतंत्र एकाकी टहल रहे हैं। किसी अज्ञात चिन्तना में निमग्न हैं। यकायक दो रमणियों (वासना और कुब्जा) का लजाते, सकुचाते, इठलाते हुए प्रवेश। कुमार भौचक्के से उनकी ओर देखने लगते हैं।]

कुमार—आप कौन हैं ?

कुब्जा—मैं...तो.....आप की दासी ही समझिए।

कुमार—मेरी दासी कोई नहीं। सब बहिनें, माताएँ; समझीं आप ! (वासना की ओर संकेत करते हुए) आप का परिचय।

कुब्जा—आप ही नगर को सब से सुन्दर बाला कुमारी वासना हैं। और मैं इनकी सहेली कुब्जा !

कुमार—तो आप ने कैसा कष्ट किया ?

कुब्जा—आपके दर्शनों के लिए चलीं आईं।

कुमार—केवल दर्शनों के लिए ? मुझ में ऐसी कौन-सी खूबी है जो आप ने इतना कष्ट किया ?

वासना—(कनखियों से देखती हुई) कुमार, आप जानते हैं कमलिनी रवि के दर्शन कर खिल उठती है और कुमुदिनी शशि के ? तो मैं अपने शशि के दर्शन करने चली आई तो क्या कष्ट किया ?

[लज्जा की लाली से मुख अरुण हो जाता है। नीचे देखने लगती है। कुमार मर्माहत-से हो जाते हैं। मौन रहते हैं कि कर्तव्य विमूढ़-से।]

कुब्जा—वासना-कुमुदिनी-प्राणवल्लभ-शशि! मौन क्यों? दो ही प्रेम के बोल बोल दो!

[फिर भी मौन रहते हैं। रमणियों की ओर एक टक देखते हैं।]

वासना—इतने निष्ठुर क्यों हो रहे हो? मुस्कुराकर ही स्वीकृति दे दो प्रियतम! प्राण वल्लभ! प्राणेश!

कुमार—शान्त, बहिन शान्त! पराकाष्ठा! अतिक्रमण, सीमा का अतिक्रमण! प्रेम नहीं वासना! इन्द्रियजन्य अतिरेक! प्रेम की इतनी विडम्बना क्यों कर रही हो?

[दोनों लज्जित सी निस्सहाय इधर-उधर आँखें फाड़-फाड़ कर देखती हैं जैसे उसी समय जमीन में समा जाना चाहती हों।]

कुब्जा—कुमार, प्रेम-भिखारी का इतना अपमान न करो।

वासना—ऐसा तो स्वप्न में भी न सोचा था देव!

कुमार—यदि न सोचा था तो अब सोच लो। प्रेम यदि इस प्रकार होने लगे तो मर्य्यादा का कहीं नाम भी न रहे। तुम्हारा जादू चाहे सब पर चल जाए पर मुझ पर तो शायद.....!

सुन्दरी! तुम्हें अपने सौंदर्य पर गर्व है। तुम मुझे इसी बल पर मोहने के लिए आईं, फँसाने चलीं, मुझ स्वतंत्र को अपना बंदी बनाने चलीं।.....

सच्चे प्रेम में त्याग होता है सुन्दरी, वासना नहीं।

मैं आपका और अपमान नहीं करना चाहता। आप यहाँ से अविलम्ब प्रस्थान करें।

[दोनों लड़खड़ाती हुईं चलीं जाती हैं। झाड़ी के पीछे से एक महिला निकलती है]

कुमार—(उस महिला को देखकर) अरे सुमति बाई! तुम यहाँ कहाँ?

सुमति बाई—यहीं ही।

कुमार—देखा, इन इन्द्रजाली महिलाओं का जादू?

सु० बा०—हाँ, पर आप बड़े निष्ठुर निकले; पिघले भी नहीं! जरा भी नहीं! जरा उनकी सान्त्वना के लिए ही हँस देते! बड़े पत्थर के हो।

कुमार—क्या कहती हो बहन? क्या मेरी परीक्षा लेनी चाहती हो?

सु० बा०—तुम्हारी परीक्षा तो हो चुकी। तुम सफल उतरे। किन्तु.....

कुमार—किन्तु, लेकिन अब भी कुछ?

सु० बा०—हाँ, भाई अब भी ! तुम अपने को स्वतंत्र कहते हो स्वतंत्र ! पर···

कुमार—पर, पर क्या ? क्या मैं अब भी परतंत्र हूँ ?

सु० बा० -भय्या ! तुमने नगर स्वतंत्र किया, वासना के बन्धन में न पड़े। किन्तु, फिर भी परतंत्र !

कुमार—कैसे भग्नि ?

सु० बा०—इस जगत-प्रवाह में कौन स्वतंत्र हैं ? कौन भव-जल में कर्म्म-उर्मि-साँकलों से बद्ध नहीं ? कौन संसार-सागर की लहरों के थपेड़े नहीं खाता ? कौन सुख-दुख नहीं भोगता ? कौन जन्म-मरण के चक्कर नहीं लगाता ? फिर भी तुम अपने को स्वतंत्र कहते हो स्वतंत्र ! तुम कैसे स्वतंत्र ?

कुमार—तो स्वतंत्र होने का कुछ उपाय भी है ?

सु० बा०—हाँ !

कुमार—वह क्या ?

सु० बा०—'सम्यक दर्शन, चारित्राणि मोक्ष मार्गः।'

कुमार—समझा नहीं बहिन ?

सु० बा०—सच्चे देव, गुरु, शास्त्र में श्रद्धा रखना, सच्चा ज्ञान प्राप्त करना, सच्चरित्र बनना ही तो मोक्ष का मार्ग है; सच्ची स्वतंत्रता की सीढ़ी है।

कुमार—तो सत्-असत् का विवेक होना आवश्यक है।

सु० बा०—हाँ भाई आवश्यक ही नहीं परमावश्यक ! इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्री महाचार्यशिरोमणि उमास्वाँति मुनीश्वर के 'तत्वार्थ सूत्र' का अध्ययन-मनन करो और उसे जीवन में उतारो।

कुमार—(दृढ़ निश्चय से) मैं अवश्य ही इस मार्ग पर चलूँगा। सच्ची स्वतंत्रता पाऊँगा। भव-बन्धन को काटूँगा।

सु० बा०—मुझे प्रसन्नता है कि तुम आज सच्ची स्वतंत्रता का मूलमन्त्र समझे। मैं अब जाती हूँ·····

कुमार—अच्छा तो अभिवादन·····!

[सुमति बाई का प्रस्थान।]

कुमार—तो सच्ची स्वतंत्रता है जग-बन्धन से मुक्ति पाने में और है—'सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः' इसे अपनाने में !

[वाद्य-वादन होते हुए पटाक्षेप]

हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या, सब जग करना है !!

श्री शालिग्राम शर्मा बी० ए० (द्वितीय वर्ष), विशारद

हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन मैं ही क्या, सब जग करता है !!
तू स्वर्णिम ऊषा सी सुन्दर जीवन सुखमय करने वाली।
मानव के शुष्क हृदय को तू मधुमय रस से भरने वाली।
तू पूत जाह्नवी की धारा, तू पारिजात की है डाली।
तू शरद सोम सीकर देती निज कर से रजनी उजियाली।
तेरी तरणी पर बैठ व्यक्ति भवसागर पार उतरता है!
हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या सब जग करता है !! १

कानन में भूखा 'चानन करता मस्ती का अनुभव है।
केकी को मस्त नाचने में मिलता अपूर्व कुछ गौरव है।
शुक, सारी, पारावत वन में व्रत कर आनंद उड़ाते हैं।
पर चामीकर-पिंजर में वे मोदक भी खा, दुख पाते हैं।
तू मातृ-क्रोड़ सी प्रिय लगती, सारा जग तुझ पर मरता है!
हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या सब जग करता है !! २

तेरा अस्तित्व अनोखा है, तेरा व्यक्तित्व निराला है।
तेरे भीतर जगदीश्वर ने कुछ अद्भुत जादू डाला है।
तेरी महिमा, तेरी गरिमा, तेरी महर्घता न्यारी है।
उन्नति का बीज उगाने को तू एक उर्वरा क्यारी है।
तेरे आगे कँपती रहती थर थर सदैव बर्बरता है!
हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या सब जग करता है !! ३

लाखों शीशों को दे करके तेरी रक्षा की जाती है।
तेरी मख पूरी करने को कितनी आहुति दी जाती है।
तू योग्य नागरिक की जननी, तू देशों की आधार-शिला।
गाँधी, नेहरू, राणा, शिव को तव कारण ही है सुयश मिला।
युग युग का भीषण निविड़ तिमिर तव प्रेमी क्षण में हरता है!
हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या सब जग करता है !! ४

हाँ एक बात कहता हूँ मैं, यदि तू अनियन्त्रित हो जाती।
तो परतन्त्र से भी बढ़कर तू दंशक बन काटे खाती।
इस हेतु तुझे नित सावधान अनियन्त्रण से रहना होगा।
श्रमिकों के शोणित में सनकर तुझको न देवि ! बहना होगा।
तू नैतिक और नियंत्रित बन इसमें ही तव तत्परता है!
हे स्वतन्त्रते ! तव अभिनंदन, मैं ही क्या सब जग करता है !! ५

छात्रों से

*

रचयिता श्री सूरज सहाय शर्मा

तुम फिर जग जाओ एक बार !

सन इकइस की याद करो जब मचक उठी थी अपनी टोली।
छोड छोड़ स्कूल तुम्हीं ने, खेली थी प्राणों की होली।
कर असहयोग भर दीं जेलें भारत आज़ाद बनाने को।
बहुतों ने दे दी प्राणाहुति मानव-मर्य्याद बचाने को।
घबराकर गोरे काँप उठे सन् ब्यालिस जैसे रेल तार ॥१॥
तुम फिर जग जाओ एक बार !

तुमको जग के जग रङ्ग मञ्च पर; वह अभिनय करना होगा।
कातर पीड़ित के अञ्चल पर; तन मन धन सब धरना होगा।
पीता ही होगा काल कूट अब प्रलयङ्कर बन जाने को।
कवच पहन ले अस्त्र शस्त्र प्रस्तुत हो तुम रण जाने को।
बर्बरता से खुल कर कह दो मेरा करुणा से अतुल प्यार ॥२॥
तुम फिर जग जाओ एक बार !

तुमको जलते अंगारों से; आलिंगन करना ही होगा।
यश कीर्ति छोड़ने के पहले दुख चुम्बन करना ही होगा।
लड़ जाओ तुम निर्भय होकर आँधी पानी तूफ़ानों से।
डग मग होती हो नाव अगर; खेलो अपने बलिदानों से।
सागर ज्वारों तुम्हें चुनौती, डुबाना तुम, मैं करता पार ॥३॥
तुम फिर जग जाओ एक बार !

झंझा अपना वेग बखेरे; घन चपला को लेकर टूटे।
वज्रपात हो महा प्रलय हो नीचे ज्वाला का गिरि फूटे।
फिर भी जय बोल बढ़ो आगे कर लिये अहिंसा धारों को।
दो हिंसा का सर तोड़ कुचल उन भीषण अत्याचारों को।
मानवता का शंख बजा दो गूंज जाय अग जग पुकार ॥४॥
तुम फिर जग जाओ एक बार !

इस युग में भी अब पीड़ित जग सुखमय त्यौहार मनाने को।
है बाट तुम्हारी देख रहा कल्पना प्रबल कर पाने को।
यदि बर्बरता के साथ कहीं; कायरता नाश नहीं पाये।
तो हो सकता है शोषित जग तुम पर विश्वास नहीं लाये।
वैषम्य मिटाकर दुनियाँ से समता को शीघ्र वरो वीरो।
मृगराजों को मृग शावक या मृग को मृग राज करो वीरो।
शोषण उत्पीड़न क्रन्दन से कर मुक्त मही भर दो बहार ॥५॥
तुम फिर जग जाओ एक बार !

स्वतंत्रता दिवस

[लेखक—श्री अनन्त प्रसाद जैन B. Sc. (Eng.) "लोकपाल"]

हर वर्ष स्वतंत्रता दिवस आता है और चला जाता है। हम भी संसार की देखा देखी खुशियाँ मना लेते हैं। पर क्या हम सचमुच खुश हैं? हमने स्वतंत्रता पाई और उसके पाँच वर्ष पूरे हो गए। इन पाँच वर्षों में क्या क्या हुआ किसी से छिपा नहीं है। गरीबों ने समझ रखा था कि अब उन्हें कुछ आराम की साँस लेने का मौका हाथ लगेगा। लेकिन उम्मीद उम्मीद ही रह गई। गरीबों की मौत सभी जगह है। हमारी स्वतंत्रा ने भी धनियों के ही खजाने भरे।

क्या महात्मा गांधी ने इसी स्वतंत्रता के लिए अपनी बलि दे दी? क्या हमारे स्वर्गीय नेताओं ने ऐसी ही स्वतंत्रता का आवाहन किया था और अपना सर्वस्व चढ़ाया था। क्या जवाहर लाल ने इसी के लिए गाँव-गाँव की खाक छानी थी? क्या हमारे नौजवान शहीदों ने इसी के लिए अपनी कुर्बानियाँ कीं? क्या १८५७ से लेकर अब तक हम इसी लिए अपना रक्तदान करते रहे? क्या १९४२ में होने वाले हत्याकांड में विदेशियों की गोलियों के शिकार हमारे नौनिहाल इसीलिग हुए थे?

आज भी नेहरू हमारे प्रधान मंत्री हैं। हम उन्हें अपना सबसे प्यारा नेता मानते हैं—पर क्या नेहरू हमारी तकलीफों को जरा भी कम करने में समर्थ हुए? हाँ, कुछ मोटे-मोटे नेता नामधारी लोगों ने अवश्य हमारे नाम में हमारा प्रति निधित्व करके अपने अरमानों की पूर्त्ति की—पर हमारे अरमान तो भ्रष्टाचार और पावरपौलिटिक्स की दो तर्फी दीवारों पर टक्कर खा-खाकर चूर-चूर हो गए। हम स्वतंत्रता दिवस की खुशियां मनाते हैं पर हमारा दिल भीतर भीतर रोता रहता है। यह भी गरीबी की एक विडम्बना ही है। यदि गरीब ऐसी हालत में आवाज उठावे तो वह देश द्रोही कहा जाता है पर गरीबों के खून पसीने से निकले धन से मोटे होने वाले हर तरह के प्रत्यक्ष या प्रछन्न "व्यापार" करने वाले देश भक्त कहे जाते हैं।

भारत में अविद्या और गरीबी दोनों की प्रधानता है उस पर भी धर्माधता एवं जाति पांत अथवा छुआछूत वगैरह ने लोगों को इस लायक नहीं रख छोड़ा है कि कोई राय कभी दे सकें। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक चक्रचाल भी स्वतंत्र राय व्यक्त करने की स्वतंत्रता एकदम ही

नहीं देते। पूंजीवादी प्रेसों और उनकी सरकारों का व्यापक प्रचार गरीबों की सुनवाई कहीं नहीं होने देता। गरीब यदि जीने की कुछ सुविधाएँ माँगता है, अपनी आवाज बुलंद करने की चेष्टा करता है तो उसे सभी जगह विध्वन्सक, साम्वादी, देश द्रोही आदि नामकरण देकर उसे हर तरह दबा दिया जाता है। यदि किसी स्वतंत्र देश ने पूंजीवादी देशों के संरक्षण बिना उन्नति करने की "धृष्टता" की या प्रयत्न किया तो उसे किसी प्रकार युद्ध में घसीट कर बर्बाद कर दिया जाता है।

हमारा भारत स्वतंत्र तो हुआ पर इन्हीं आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा वातावरण में इस तरह दब गया कि खुलकर सांस न ले सका। गरीब पिसते ही रहे। नया चुनाव हुआ पर जहाँ इतनी अविद्या और शक्ति तथा शक्ति वाले (Power and men in power) का भय और शक्ति प्राचीन काल से हमारे नागरिकों के अन्दर कूट-कूटकर भरी हुई है वह चुनाव (Election) तो किसी भी हालत में जनता के सच्चे आन्तरिक मतों का द्योतक नहीं हो सकता—जब कि चुनाव के समय वे ही लोग राजकार्य चलाने वाले बने ही रहे जो या तो भ्रष्टाचार में स्वयं संलिप्त थे, या उसे दबाने में सर्वथा असमर्थ रहे थे और जिन्हें किसी भी उपाय से शक्ति अपने हाथ में करना ही एक मात्र इष्ट या ध्येय था। विहार प्रान्त में अभी हाल में ही एक मिनिस्टर ने कहा कि हम "माइनर इर्रीगेशन" (Mionor irriegation) के कारण ही चुनावों में सफल हो सके। प्रान्त में माइनर इर्रीगेशन (Mionor irriegation) के नाम में जो कुछ हुआ या होता रहा अखबार पढ़ने वाले जानते हैं। चुनाव के थोड़े ही दिन पहले एक करोड़ से अधिक रुपया इस मद में सरकार ने निकाला और खर्च किया। पहले भी कई करोड़ खर्च किए गए थे। हाल में भारतीय पार्लियामेंट में एक सदस्य ने कहा कि हमारे इर्रीगेशन स्कीम के रुपये खेतों की सिंचाई नहीं करते "पाकेटों" (Pockets) की सिंचाई करते हैं। इत्यादि। यह तो हमारी स्वतंत्रता की हालत है। हम रोएं या हँसें समझ में नहीं आता।

एक पंचवर्षीय योजना बन रही है पर उसमें भी देश व्यापी भ्रष्टाचार को दूर करने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। हमारे प्रधानमंत्री जी कहते हैं कि हम एक एक काम एक-एक बार (in order of priority) करेंगे। पहले पाँच वर्षों में भारत को भोजन-अन्न में स्वावलंबी बनाना है। फिर वस्त्र में, फिर मकान, उसके बाद शिक्षा की वृद्धि। इतना कर लेने के बाद तब दूसरी तरफ ध्यान दिया जायगा। इस तरह पाँच-पाँच वर्ष करके अन्न, वस्त्र, मकान, शिक्षा और

स्वास्थ्य में पचीस वर्ष लग जायँगे। पर यदि भ्रष्टाचार दूर नहीं हुआ तो मेरा ख्याल है कि पचीस वर्ष क्या सौ वर्ष में भी कुछ होना संभव नहीं होगा। गरीब विचारा तब भी रोता ही रह जायगा—भले ही देश का उत्पादन और देश में समृद्धि की हर ओर वृद्धि हो जाय। कुछ लोग मौज करते रहेंगे और बाकी उनकी ओर देख देखकर तरसते और किसी "निर्गुण सगुण" भगवान को गुहराते रहेंगे।

भला धन और शक्ति वाला भी कहीं अपना धन और शक्ति स्वयं अपनी खुशी से छोड़ता है? विनोवा जी ने "भू दान यज्ञ" नाम का काम उठाया है—पर क्या इससे हमारी समस्याएँ कभी भी सुलझेंगी? दान देना, दान लेना, दाता और भिक्षुक की रीति ही तो पूंजीवादी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखने का सबसे बड़ा यन्त्र है। इसके लिए तो सरकारी कानून द्वारा ही व्यवस्था में सुधार लाकर कुछ प्रभावकारी रूप से होना संभव है। हाँ, जब तक पूंजीवादी व्यवस्था कायम है इस तरह के दान वगैरह से एकदम कुछ नहीं से थोड़ा सा लाभ किसी हालत में फिर भी हो ही जाता है। विवशता है। जो बन पड़े, जो कुछ थोड़ा भी हो जाय वही सही-वही ठीक। यों तो हमारी वर्तमान सरकार भी सोई हुई नहीं है, जागरूक है और कुछ कर रही है। कुछ किया भी है। पर हमारे कष्ट इतने बड़े हैं कि हमारी सरकार की सुस्त प्रगति उनके सामने कुछ भी ऐसा नहीं कर पाती जिससे गरीबों को थोड़ी राहत मिले और आगे के लिए उम्मीद और संतोष हो।

चीन भी जब तक पूंजीवादी देशों के प्रभाव, संरक्षण और "चक्कर" में पड़ा रहा वहाँ की आम जनता दुख भोगती ही रही। जब से वहाँ नई व्यवस्था बनी है तीन ही वर्षों में पचीसों वर्षों का काम हो गया। आज वहाँ अधिक से अधिक जनता भविष्य के लिए पूर्ण आशावान और वर्तमान में उत्साहशील है। हमारे भारत में लोग "लैण्डआर्मी" बनाने की बातें करते हैं पर यह नहीं सोचते कि जहाँ एक व्यक्ति के पास सौ एकड़ जमीन है और दूसरे के पास एक एकड़ भी नहीं वहाँ जिनके पास जमीन नहीं उनमें कैसे उत्साह उत्पन्न हो सकता है? चीन में एक नदी को बाँध बनाने के लिए बीस लाख आदमी खुशी-खुशी काम में भिड़ गए, यहाँ लोग ताज्जुब करते हैं कि भारत में ऐसा क्यों नहीं होता? कैसे हो? वहाँ जमीन सब की है—बाँध से लाभ होगा तो सब को होगा। यहाँ तो वह बात नहीं। किसी भी काम में सच्चा एवं स्थाई उत्साह होने के लिए अपना हित भी कुछ होना आवश्यक है। उद्योग धंधों को ही लीजिए। मजदूरों को बँधी मजदूरी मिल जाती

है। एक को पचीस रुपए महीने तनखाह मिलती है तो वहीं दूसरे को एक हजार रुपए महीने तनखाह मिलती है। दोनों मनुष्य ही हैं। एक को बड़े-बड़े लहरदार बँगले हैं तो दूसरे के लिए एक साबूत कोठरी भी नहीं। क्या यह सब उचित है? सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में भी येही बातें सभी जगह मौजूद हैं। और हमारी सरकार ने उसे घटाने के बजाय अब तक सुदृढ़ ही करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। इतनी विभिन्नता लिए हुए भी यदि कलह का गुलाम भारत आज उन्नति के सपने देखे तो ये सपने ही रहेंगे। अमेरिका इंगलैण्ड सैकड़ों वर्षों से स्वतंत्र रहे हैं समुद्र ने उनकी रक्षा की है उनसे हमारी कोई तुलना नहीं। रूस और चीन अपनी व्यवस्था में परिवर्तन करके ही इतनी शीघ्र उन्नति कर सके कि वे आज ऐंग्लो अमेरिकन पूंजीवादी सुदृढ़ गुट्ट की धमकियों के सामने भी छाती ताने खड़े हैं। गरीब और गुलाम में कोई फर्क नहीं। गरीब स्वतंत्र रहे तो या गुलाम रहे तो उसमें कोई विशेषता उसके लिए नहीं होती। सच्चा उत्साह पैदा करने के लिए गरीब को वादाओं द्वारा अब नहीं फुसलाया जा सकता उसके सामने तो ठोस बातें और प्रत्यक्ष हित (interest) साधन की व्यवस्था रखनी होगी। देश का वर्तमान सामाजिक वैषम्य इतना भीषण है कि सारी प्रगति की चेष्टाएँ इसके पेट में इस तरह चली जायँगी जैसे एक मगर किसी मछली को निगल जाता है। देश की सच्ची उन्नति, प्रगति एवं स्थाई उत्थान के लिए इस वैषम्य को घटाना और घटा कर यथा संभव मिटा देना ही हमें उत्साह प्रदान कर सकता है और हमारी प्रगति तब एक सूत्रता में आवद्ध होने से तेज होगी। हम अमीर गरीब करके अलग-अलग एक दूसरे को न समझते हुए सम्मिलित चेष्टा करेंगे और तभी फल भी आश्चर्य जनक होगा।

हम स्वतंत्र हुए। पर हमारे उत्साह बजाय बढ़ने के अधिकतर विषयों में भग्न ही होते रहे। हमारे अधिकतर नेता पश्चिमीय प्रबल प्रचार और गुप्त षड़यन्त्रों से इतने अधिक प्रभावित हो गए हैं कि उनका अपना स्वतंत्र विचार कोई रह ही नहीं गया है। अब समय आ गया है (या समय बीतता जा रहा है) जब उन्हें पूँजीवादी प्रचार की रंगीनियों से अपने दृष्टिकोण को बदलकर समय की जरूरतों पर ध्यान देना होगा।

जमींदारियाँ खतम हुईं, और भी बहुत सी बातें होंगी ही। पर अब सुस्ती की जगह अधिक तेजी और प्रगति की आवश्यकता है। हिन्दू कोटविल अभी भी खटाई में पड़ा है। भला वगैर स्त्रियों की स्वतंत्रता और उत्थान के कुछ हो सकता है? आधी

जनसंख्या जब पर्दे के पीछे पड़ी रहेंगी और उससे होने वाली संतान भी तो जब वैसी ही पिछड़ी ही होगी तो भला क्या खाक उन्नति होगी ? अछूतों और पिछड़ी जातियों की समस्या भी अभी ज्यों को त्यों वहीं पड़ी है जहाँ महात्मा गांधी छोड़ कर चले गए। बातें तो लोग बहुत बड़ी-बड़ी करते हैं पर शक्ति के मद में मतवाले ये लोग सचमुच नीचे वालों को जल्दी ऊपर उठने नहीं देना चाहते। आज भी अधिकतर विद्यालयों से पचहत्तर फी सदी ऊँची जातियों के लड़के ही पढ़ लिख कर परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं। कुछ एक स्कारलरशिप दे देने से तो कुछ होने जाने का नहीं। ये ही सब समस्याएँ हैं जिनका समाधान न पहली पंचवर्षीय योजना में है न आगे ही कोई उम्मीद दीख पड़ती है। फिर ऐसे स्वतंत्रता दिवस कितने भी क्यों न आवें जायँ, हम शक्ति संपन्न लोगों के प्रभाव में भूखे रह कर भी खुशियाँ भले ही मना लें पर जब तक हमारा दुख, हमारी दुश्चिंताएँ, हमारा व्यापक आर्थिकशोषण एवं सामाजिक विभिन्नताएँ दूर नहीं होतीं हमारे लिए तो सब कुछ खोखला ही रह जाता है। फिर भी ऐसी स्वतंत्रता से उन्नति करने का और व्यवस्थाओं में सुधार करने की काफी स्वतंत्रता देश को मिली है और हम चाहें तो बहुत कुछ हो सकता है। आज भी मलाया, हिन्द चीन, व्युनीशिया, कोरिया या और दूसरे अफ्रीकी एवं एशियाई देश विदेशियों के पैरों के नीचे बुरी तरह दले मले जा रहे हैं जब रूस चीन स्वतंत्र होकर अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत तो कर सके हैं। हम भी स्वतंत्र हुए हैं और अपने पैरों पर खड़े होने की आशा करते हैं यही संतोष है।

कोई भी व्यापक सुधार किसी भी देश में देश की सरकार या राज्य 'शासन' या राज्य सत्ता के सहयोग से ही होता है यही संसार का इतिहास कहता है। जनता आन्दोलन करती रह जाती है पर यदि राज्य सत्ता कुछ नहीं करती तो कुछ नहीं होता। भले ही जनता बाद में बिगड़ कर राज्य सत्ता को उलट कर स्वयं शासन अपने हाथ में ले ले और तब सत्ता की मदद से जो चाहे करे तो उसमें भी सत्ता पहले हाथ में आने पर सत्ता की सहायता से ही आगे कुछ हो पाता है। जैसे फ्रान्स, अमेरिका, रूस वगैरह में हुआ। अमेरिका वगैरह में गुलामी का अंत भी राज्य सत्ता की सहायता एवं सहयोग द्वारा ही संभव हुआ। दूसरे श्रमिकों वगैरह की भलाई के कानून भी इसी तरह बने। आज भी साउथ अफ्रिका में न जाने कितने दिनों से आन्दोलन चलते रहने के बावजूद भी भारतीय और अफ्रीकी "गोरों" के साथ बैठने का अधिकार नहीं पा

सके। भारत में भी सरकार यदि प्रगति की ओर देश को ले जाना चाहती है तो देश की स्वतंत्रता उसमें सहायक होगी। उपयुक्त जनमत बनाने या बनने देने का साधन भी अधिकतर सरकार के ही नियन्त्रण में है। पुरानी कहावत है "यथा राजा तथा प्रजा"—वर्तमान रूप में यही "यथा प्रजा तथा राजा" कहा जाता है। पर दोनों ही समान रूप से लागू एवं सही है।

अभी तो हम पाते हैं कि जनता के दुख घटे नहीं और हर ओर टैक्सों की जैसे बाढ़ सी आ गई है। डाइरेक्ट टैक्स तो अब भी हानिकर हैं। खास कर सेल्सटैक्स जैसे टैक्स जो सीधा आम जनता से हर बार जब वह कुछ जरूरी वस्तुएँ लेने बाजार जाता है तो उसे देने पड़ते हैं। यह विरोधी भावनाओं को जन्म देने वाला और देशहित का घातक है। साथ ही व्यवसाई लोग कम्पीटिशन में काफी अनाचार की तरफ जाने को मजबूर होते हैं—कुछ जीने के लिए कुछ संचय और लोभ से। इन सब का इकट्ठा प्रभाव देश को अवनति की तरफ ही ले जाने वाला हो सकता है। जिस व्यक्ति ने भारत में पहले पहल इस टैक्स का जन्म दिया उसने देश का बड़ा अहित किया। अब भी इसे बदला जा सकता है। आम जनता से सीधा टैक्स न लेकर इम्पोर्टरों और प्रोड्यूसरों (Importers & producers) से यही टैक्स यदि पहले ही ले लिया जाय और इंकमटैक्स की तरह प्रान्तों में बाँट दिया जाय तो बहुत बड़े यतन से देश की रक्षा हो सकती है। पर हमारे नेता इसे समझें तब न यही कठिनाई है। हमारा देश पिछड़ा देश है उसमें इस तरह के टैक्स मनोवैज्ञानिकतः बड़े ही हानिकर हैं—हर तरह नुकसान देने वाले। रुपए तो दूसरे तरीकों से भी उतने ही दूसरे तरह के करों द्वारा उगाहे जा सकते हैं।

फिर सब के ऊपर घूस रिशवत ने तो जनता को और तबाह कर रखा है। कानून बनाने वाले घूस देने वाले को ही सजा देने की बात बार-बार करते हैं। पर घूस देने वाला भी उसी को घूस देने की हिम्मत करता है जो लेता है। यदि कड़ी कारवाई इस विषय में वर्ती जाय और घूस लेने वाले का जुर्म पचासी फी सदी और देने वाले का पन्द्रह फी सदी समझ कर ही दोनों को सजा दी जाय तो काफी कमी इस अनाचार या भ्रष्टाचार में भी हो सकती है। आज देश के लिए सरकारी उच्चाधिकारियों की गिरावट सबसे बड़ी समस्या और देश की या जनता की पतन की जिम्मेदार है। स्वतंत्रता का मतलब हम ठीक-ठीक समझ सकें इसके लिए जरूरी है कि सबसे पहले इसे दूर किया जाय।

सारी कमियों के बावजूद भी

(शेषांश पृष्ठ ३७ पर)

कदम डगमगा उठे

(श्री सागर मल वैद्य)

कदम डगमगा उठे
कि पैर थर थरा उठे
कि भोर हुआ पूर्व से
कि चीन से कि रूस से
कि रुक गये हैं ये कदम
कि उठ चुके थे जो कदम
कि हार गये सिओल में
कि हार गये चीन में
बस इसलिये
कि डर रहे हैं ये कदम
कि थक रहे हैं ये कदम
कि थक गये हैं ये कदम
कि अब डरेंगे ये कदम

क्यों किसलिये ?
कि जग उठा है अब मनुजग
कि बढ़ चला है अब मनुज
कि सो चुकी है दासता
कि सो चुकी है हीनता
कि मिट गई है दीनता
कि माँगते अधिकार अपने
कि जानते अधिकार अपने
कि मिट रहा है भेद अब
कि तू गरीब, मैं अमीर
कि मैं गरीब, तू अमीर
जग उठा अब मनुज
तब फिर:—

कि एक स्वर एक गीत कि एक ही निशान हो
कि एक ही डगर बढ़े कि एक ही गुमान हो
कि एक ही आवाज में कि एक ही आवाज हो
कि रुके नहीं झुके नहीं कि बढ़े चले बढ़े चलो !

जागरण

(रचयिता साहित्यालंकार श्री परमेश्वर लाल जैन 'सुमन', समस्तीपुर)

काली रजनी अब भाग चली, दे सुन्दर रक्तिम सुधा अमर।
निकली प्राची से किरण ज्योति, निकला धीरे से अरुण प्रखर॥
निष्प्राण विवश कंकाल सभी, अब जल्दी-जल्दी जाग रहे।
जो उनका था, वह उनका है, वे अपना सब कुछ माँग रहे॥
इन अस्थि-चर्म के पुतलों से, चिनगारी निकली अमिट लाल।
इन भूखे किसमत वालो के, उर में टकराई अग्नि ज्वाल॥
अब तो दलितों की आँख खुली, अब तो संसार नया होगा।
जंजीर पुरानी टूटगई, अब तो उद्गार नया होगा॥
अब दिग्दिगन्त हँसता रह-रह, मचगई क्रान्ति की नवल धूम।
अब तो सागर रह-रह कर है, भारत का पद-तल रहा चूम॥

बच्चों की कलम से—

लो आज़ादी का दिन आया

(सुमलता जैन कक्षा ७)

लो आजादी का दिन आया।
सबने है त्योहार मनाया॥

खुशियाँ खूब मनाई जातीं। बड़े जलूस निकाले जाते।
जलसे और सभाएँ होतीं। झंडा गायन गाए जाते।
और मिठाई बाँटी जाती। 'भारत माता की जय' करते।
किन्तु न सब को है मिल पाती॥ 'गाँधी की जय' नारे लगाते॥

सब में है आनन्द समाया।
यह आज़ादी का दिन आया॥

काँग्रेस और स्वराज्य

(लेखक—मिथलेशचन्द्र जैन कक्षा ६)

सन् १८८५ ई० में काँग्रेस की नींव पड़ी यह नींव एक अंग्रेज ने डाली थी। उसका नाम मिस्टर ह्यूम था। उसके हृदय में यह भी न था कि किसी दिन हमारी ही बनाई हुई काँग्रेस हमको भारत से निकाल बाहर करेगी। पहले तो उसमें ऐसे लोग शामिल हुये जो चाहते थे कि अंग्रेजों की तरह भारत वासियों को भी नौकरियाँ मिलें। इसके पश्चात उसमें ऐसे लोग शामिल हुये जो सम्पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। इसके नेता दादा भाई नौरोजी, तिलक, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं महात्मा गाँधी थे उस समय ऐनीबेसेण्ट नामक एक अंग्रेज महिला ने 'होमरुल' का झंडा उठाया जिसका अर्थ है—"अपना शासन" इस अंग्रेजी हुमूकत का असली विद्रोह लोकमान्य गंगाधर तिलक ने किया था। उनको जेल जाना पड़ा। सन् १९२० ई० में कलकत्ते के अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने असहयोग प्रस्ताव पास किया जिससे पुराने लोग डर गये और उन्होंने महात्मा गाँधी का साथ छोड़ दिया अब काँग्रेस के नेता महात्मा गाँधी हो गये जिन्होंने सत्य अहिंसा की लड़ाई लड़ी और वे कई सालों तक संघर्ष करते रहे। सन २१, ३१, में बड़ा भयानक सत्याग्रह हुआ। जिसमें जनता ने खुलकर हिस्सा लिया इस सत्याग्रह में हजारों नौ जवान जेल गये। बहुतेरे गोली के शिकार हुये। अनेक नेता दस-दस-पंद्रह-पंद्रह बार जेल गये अंत में त्याग और बलिदान का नतीजा यह हुआ कि १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हो गया। सत्य अहिंसा की लड़ाई ने इतनी बड़ी अंग्रेजी सत्ता पर विजय पाई।

दूध का दूध पानी का पानी

साहित्य-समीक्षा

शहीद गाथा भाग १-२

रचयिता—श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' सम्पादक—श्री नर्मदा प्रसाद खरे

प्रकाशक—सं० सि० सुरेशचन्द्र जैन, मन्त्री मध्यप्रदेशीय जैन सभा जबलपुर।

पुस्तक का आवरण पृष्ठ तो जैसे मुखरित ही हो उठा है। मुख्य पृष्ठ के दृश्य की सजीवता के समक्ष शीर्षक देने की भी आवश्यकता न थी। प्रेस की छपाई, सुन्दरता, स्पष्टता सराहनीय है।

प्रथम भाग में सम्पादक द्वारा लिखी गई 'अज्ञात शहीदों के प्रति'—कविता अपना ऐसा प्रभाव डालती है कि पुस्तक के शिथिल अंशों के पढ़ने में भी ऊब नहीं आती। शैली की उत्कृष्टता में भावों की सबलता अपना रस छलकाती है।

तटपर घड़ों का भरने के पहले ही फूट जाना, स्याही द्वारा उनका भुलाया जाना आदि भाव तो सुन्दर हैं ही, पर कुछ उपमाएं क्या सजीव है? देखिए:—

"जिनकी हरी दूब सी पत्नी अब तक बैठी रोती है।
जिनकी बूढ़ी माँ बेचारी आँसू से मुँह धोती है॥"

नव-वधू को हरी दूब कह कर कवि ने आगे के निर्जीव शब्दों में भी जीवन का सञ्चार कर दिया है।

आगे श्री 'सुधेश' जी के 'उदय' नामक खण्ड काव्य को स्थान दिया गया है जो पुस्तक के सम्पूर्ण प्रथम भाग में छापा हुआ है और है वास्तव में मुख्यांश भी यही है। खण्ड काव्य की रीति के अनुसार यह काव्य भी परिचय से लेकर शव-यात्रा तक कई सर्गों में विभक्त है। इनमें कई मार्मिक स्थल यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। अभिमन्यु बध की भाँति मार्मिक स्थल विस्तृत और प्रभावशाली नहीं दिए गए हैं फिर भी वे कम प्रभावक नहीं हैं।

इस काव्य की अपनी विशेषताएं उदय का साहस, मजिस्ट्रेट के मना करने पर भी जनता द्वारा शव-जुलूस निकालने का निश्चय और उदय की अहिंसात्मक नीति आदि चित्र गांधी-वाद के समर्थन के द्योतक हैं। काव्य द्वारा बलिदान के मूल्याङ्कन की क्षमता जनता को प्राप्त होती है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना पुस्तक का प्रमुख लक्ष्य है।

कहीं कहीं प्रकृति का मानवीकरण भी ऐसी नवीनता और मौलिकता लेकर अवतीर्ण हुआ है जहाँ सफलता ही सफलता है। शव-दर्शन के निमित्त नेता गिरिजा-शंकर का जेल में बन्द होने के कारण विवशता का मार्मिक वर्णन हुआ है।

उदय के मरने पर:—

'झरने रोने लगे शीघ्र, सर पटक पटक चट्टानों में।
और नर्मदा खा पहाड़ गिर पड़ी, व्यथित मैदानों में॥'

पूज्याचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कविता का एक चरण क्या एक शब्द ही सुन्दर बन पड़ने पर सारी रचना को चमका देता है। अतः 'उदय' खण्ड-काव्य, अपनी कमियों के रहते हुये भी अच्छा बन पड़ा है किन्तु अन्तिम नहीं हो सकता। उदय जैसी दिवंगत आत्मा के आधार पर कवि और लेखक बहुत कुछ लिखेंगे। पर इससे भी कवि की रचना का मूल्य घटता नहीं प्रत्युत बढ़ने की ही संभावना है।

—सुरज साहय शर्मा

मानव विकास की ओर (भाग १व २)

सम्पादक—मुन्शी मोतीलाल जी रांका

प्रकाशक—व्यवस्थापक सुख साधन माला, ब्यावर

मूल्य १) + २) = ३) पृष्ठसंख्या ११६ + २४८ = ३६४

छपाई-सफाई, आकार-प्रकार की दृष्टि से इस पुस्तक के उभय भाग सुन्दर हैं।

शीर्षक के अनुरूप ही पुस्तक का विषय है, जो कि स्वाभाविक भी है। यह संकलन मात्र है। इसमें उच्च कोटि के विचारकों, महात्माओं एवं विद्वानों के विचार, भाषण, लेख एवं उनकी अन्य कृतियाँ संग्रहीत है। संकलन में रुचि परिष्कार का ध्यान रखा गया है।

यह संग्रह मानवता के नवीन विकास में, सर्वोदयतीर्थ के संस्थापन में एवं युवकों के चरित्र के निर्माण में विशेष उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसा हमारा विश्वास है। ग्रन्थ-प्रकाशन के लिए सम्पादक एवं प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। — वी० प्र०

नव निर्माण की ओर

सम्पादक एवं प्रकाशक—श्री मुंशी मोतीलाल रांका

व्यावस्थापक-सुख साधान ब्यावर

मूल्य =) पृष्ठ २०

प्रस्तुत पुस्तिका में 'नव-निर्माण' को दृष्टि में रखते हुए कुछ सुन्दर रचनाओं का संकलन किया गया है। —वी० प्र०

तत्वार्थ सूत्र (विवेचन सहित)

विवेचन कर्ता—प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी संघवी

प्रकाशक—प्रो० दलसुख मालवणिया, मन्त्री

जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस—५

मूल्य पाँच रुपया, आठ आना : पृष्ठ संख्या ४१० : पुट्ठे की मजबूत जिल्द

'तत्वार्थ-सूत्र' का महत्व दर्शन-जगत में असाधारण है। स्वामी उमास्वाति कृत यह ग्रन्थ-रत्न जैन-समाज में गीता-रामायण की तरह लोकप्रिय है। स्वाध्याय प्रेमी जन इसका स्वाध्याय करते हैं प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी संघवी ने सूत्र जी की विस्तृत विवेचना की है जो सारगर्भित है सन् १९३० में इस ग्रन्थ का मुद्रण

(शेषांश पृष्ठ ३७वें पर)

हमारा राष्ट्रीय चरित्र

आज भारतीय जन-जीवन का नैतिक स्तर कितना गिरा हुआ है, यह किसी से छिपा नहीं है। हम जीवन की महत्वपूर्ण ही नहीं प्रत्युत छोटी-छोटी बातों में भी अपनी स्वार्थपरता से विलग नहीं रहते हैं। हमारे राष्ट्र के चारित्रिक स्तर की आज शोचनीय अवस्था है। क्या सफाखाने, क्या डाकखाने, क्या रेल विभाग आदि सभी में कितने ही धूर्त लोग घुसे हुए हैं। पुलिस विभाग का तो कहना ही क्या? चोर बजारी की तो कुछ बात ही न पूछिए। भ्रष्टाचार दिन दूना रात चौगुना बढ़ ही रहा है। नए-नए संक्रामक रोग भी फैल रहे हैं। जीवन की नैसर्गिकता जाती रही है। मानव की पाशविक प्रवृत्तियाँ बलवती हो रही हैं। अहिंसक जीवन का अभाव है। सीधे, सच्चे, निस्पृह, संयमी सज्जन अब अपवाद स्वरूप रह गए हैं।

जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न ले लीजिए, वहाँ आप को चारित्रिक पतन के लक्षण दिखाई देंगे। आज भारतवर्ष में विदेशों जैसा राष्ट्रीय चरित्र नहीं रहा है। सच पूँछा जाय तो अँग्रेजों के एक तिहाई विश्व पर शासन करने की क्षमता, उनके राष्ट्रीय चरित्र का ही परिणाम थी। यहाँ चरित्र से भारत का रूढ़ि अर्थ न लेना चाहिए। चरित्र का अभिप्राय यहाँ राष्ट्रीय चरित्र से है केवल व्यक्ति के चाल चलन मात्र से नहीं, यद्यपि यह भी उसमें सन्निहित रहता है। राष्ट्रीय चरित्र में ईमानदारी, सचाई, निष्ठा प्रभृत मानवीय गुण आते हैं। इन्हीं बातों में जरा देखिए भारतवर्ष कितना गिरा हुआ है। यहाँ आप यदि सेम्पिल देखकर कोई वस्तु मंगाते हैं तो वह आपको बिल्कुल वैसी ही मिल सकेगी— इसमें सन्देह है। यहाँ तो इतना ठगई का जाल फैला हुआ है कि आप की जरा आँख बची और आप ठगे गए। मुंशी प्रेमचन्द जी एक बार सेव खरीदने गए। उन्होंने कुँजड़े को रूमाल देकर कहा—इसमें आधा सेर सेव जरा अच्छे-अच्छे छाँटकर दे-दो। कुँजड़ा समझ गया कि ये आंखों से काम लेने वाले और सौदा वापिस करने वाले बाबू नहीं हैं। उसने अपने लड़के को रूमाल देकर कहा कि जा चुन-चुन कर आधा सेर सेव इन बाबू साहब के लिए ले आ। वह गया और बँधे हुए आध सेर सेव ला दिए। प्रेमचन्द जी ने दाम दिए और अपनी

राह ली। चलते समय कुँजड़े ने अपने सेवों का बखान किया, "बाबू साहब, इतने लाजवाब सेव आपको बाजार भर में न मिलेंगे।" प्रभात में घर आकर खाने के लिए जब उन्हें निकाला तो पहला आधा गला हुआ निकला गया, दूसरा तो पूरा सड़ा, शेष दो सेव भी गले-सड़े निकल गए। जरा सी लापरवाही में यहाँ ठगा जाना मामूली बात है।

भारतवर्ष में विविध प्रकार के झूठे विज्ञापन करके लोगों को ठगा जाता है। हम भी इनके कई बार शिकार बने हैं। हमने कई ऐसी वीपियां छुड़ाई हैं जिनमें हमें कुछ भी पल्ले न पड़ा गाँठ के रुपए ही गए।

वस्तुतः आज के भारत को राष्ट्रीय चरित्र के विषय में विदेशों से बहुत कुछ सीखना है। विदेशों में धोखेबाजी, दगाबाजी, बेईमानी नहीं होती जैसी कि भारत में पद-पद पर देखने को आती है। इङ्गलैण्ड में समाचार-पत्र एक निर्दिष्ट स्थान पर रखे रहते हैं। आप जाइए उनका मूल्य वहाँ रख दीजिए और अखबार ले लीजिए। क्या भारत में यह सम्भव हो सकता है? यहाँ एक जगह अखबार रखदीजिए तो घण्टे भर बाद आपको पता भी न चलेगा कि वे कहाँ गए। यह है वहाँ और यहाँ के राष्ट्रीय चरित्र का अन्तर!

एक स्वीडेन का उदाहरण और लीजिए। उत्तर प्रदेश के वर्तमान स्वायत्त शासन-मन्त्री माननीय मोहन लाल जी अपनी वैदेशिक यात्रा में स्वीडेन गए हुए थे। उन्हें एक कारखाने को देखने का अवसर मिला। कारखाना बड़ा था परन्तु प्रबन्ध सुन्दर! मन्त्री जी को वहाँ के प्रबन्ध के विषय में जानने की जिगीषा हुई। उन्होंने वहाँ की सर्वोच्च अधिकारिणी महिला से पूँछा कि कारखाने के कर्मचारियों को वेतन किस प्रकार दिया जाता है। उन्हें बताया गया कि प्रत्येक कर्मचारी जिस समय आता है उस समय उसमें कार्ड पर मशीन के द्वारा वह समय लिख जाता है इसी प्रकार जाते समय का समय भी कार्ड पर अंकित हो जाता है। इसी कार्ड के अनुसार सब को सब का वेतन मिलता है। परन्तु खास बात तो यह कि कर्मचारियों की संख्या वहाँ हजारों है और सब को सुविधा से तनख्वाहें मिल जाती हैं। सब के वेतन अलग-अलग लिफाफों में बन्द करके और उन पर कर्मचारी का नाम लिखकर एक मेज पर रख दिए जाते हैं। वहाँ से प्रत्येक अपना-अपना वेतन ले आता है। दूसरे का छूता भी नहीं। मेज पर सभी प्रकार कम-अधिक वेतन पाने वालों की तनख्वाहें रखी रहती हैं परन्तु कोई किसी दूसरे का लिफाफा नहीं छूता। यह है राष्ट्रीय चरित्र! मन्त्री जी ने यह भी पूँछा कि कभी कोई गड़बड़ी तो नहीं होती। उन्हें विदित हुआ कि कभी भी कोई गड़बड़ी नहीं होने पाती है। क्या यह भारत में किया जा सकता है!

एक युग था जब भारत के घरों में ताले भी नहीं पड़ते थे परन्तु अब तो बिना ताले काम न चलने का। यह अवस्था क्यों हुई? यह नैतिक ह्रास क्यों हुआ? देखें

आर्थिक, राजनैतिक शैक्षिक परिस्थितियाँ कार्यकर हैं। जो भी हो, यह तो निर्विवाद ही है कि हमें अपने राष्ट्रीय चरित्र के स्तर को उठाना है। यद्यपि इस दिशा में कई संस्थाओं ने प्रयास किए हैं परन्तु कोई भी सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला है। यद्यपि राष्ट्रीय चरित्र की जिम्मेदारी बहुत कुछ सरकार पर ही है परन्तु यदि सरकार में ही चरित्रनिष्ठ आदमी नहीं हैं तो सरकार क्या कर सकती है? इस भाँति तो यह कार्य चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा ही सम्पादित हो सकता है। सरकार को आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों पर ध्यान देना आवश्यक है और चरित्रनिष्ठों को नैतिकता पर। सच्चरित्र व्यक्ति अनेक सच्चरित्रों का निर्माण कर सकते हैं। उन्हें अपना उत्तर दायित्व समझना चाहिए। सरकार को भी इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

[पृष्ठ ३४का शेषांश]

गुजराती में हुआ था अब इसका यह परिवर्द्धित एवं संस्कृत हिन्दी संस्करण है। पुस्तक के मूलकर्त्ता उमास्वाँति स्वामी के बहुमुखी जीवन का परिचय देने में लेखक ने प्रामाणिक सामग्री जुटाई है। विषय के प्रतिपादन में भी असाधारण सफलता पाई है।

पुस्तक के अन्त में 'तत्वार्थ-सूत्र' का पारिभाषिक शब्द कोश दिया गया है। इसका अपना निजी महत्व है।

तात्विक निरूपण के कारण शैली गम्भीर है। विशेष बात तो यह है कि स्पष्टीकरण में कहीं भी लचरता नहीं आई है।

दर्शन के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। पाठक इससे उचित लाभ लें। ग्रन्थ संग्रहणीय हैं। वी० प्र०

साभार विशेषांकों की प्राप्ति स्वीकृति

१. 'जैन गजट' का आचार्य शान्ति सागर हीरक जयन्ती विशेषांक
२. 'अनेकान्त' का सर्वोदयतीर्थाङ्क
३. 'जैन महिलादर्श' का नारीधर्माङ्क

(पृष्ठ ३० का शेषांश)

हमें राजनीतिक स्वतंत्रता होने से हम उन देशों से अधिक भाग्यशाली हैं जो अभी भी पराधीन हैं। हम इसी लिए स्वतंत्रता दिवस का मान करते हैं कि हम आगे बढ़ने के योग्य हो गए हैं। भारत की स्वतंत्रता एशिया के लिए एक बहुत बड़ी देन है। संसार में भी हमारी स्वतंत्रता से शान्ति की स्थापना में भारी असर पड़ा है और पड़ेगा। हमारी तो यही प्रार्थना है कि हम सर्वदा स्वतंत्र बने रहें, यह स्वतंत्रता दिवस सर्वदा आता रहे और एक दिन हम खुले दिल से हार्दिक प्रसन्नता पूर्वक इसका अभिनन्दन कर सकें और खुशियाँ मनानें में समर्थ हों। ॐ शान्तिः ॐ

Regel. No. A.576.

'अहिंसा वाणी' के विषय में

१—'अहिंसा-वाणी' का उद्देश्य सत्य-अहिंसा द्वारा विश्व में सुख, समृद्धि, शान्ति की सृष्टि के लिए तदनुकूल स्वस्थ ज्ञान सामग्री देना है।

२—'अहिंसा-वाणी' प्रत्येक माह के द्वितीय सप्ताह में प्रकाशित होती है। पत्रिका नहीं पहुँचने की शिकायत ३०वीं तारीख तक पहुँचना आवश्यक है।

३—पत्र व्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें!

४—किसी भी माह से ग्राहक बन सकते हैं। अप्रेल से बनना सुविधाजनक होगा।

५—आलोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ सम्पादक जी को भेजनी चाहिए। आलोचना करना सम्पादक के सर्वाधिकार में है।

६—पत्र में शिष्ट आदर्श एवं स्वस्थ विज्ञापन ही लिए जावेंगे। विज्ञापन-दर पत्र द्वारा पूछ सकते हैं।

७—अहिंसा-संस्कृति एवं जैन-दर्शन को व्यवहारोपयोगी बनाने के लिए तत्सम्बन्धी शंकायों का समाधान भी यथासम्भव पत्रिका में किया जावेगा। पाठक शंकाएँ सम्पादक को भेजें।

८—प्रकाशनार्थ रचनाएँ पत्र के उद्देश्य से सम्बन्धित होनी चाहिए तथा सम्पादकजी के पास भेजनी चाहिए। निबन्ध, कहानी, एकांकी, कविता, गद्य-गीत, के गद्य-काव्य आदि सभी प्रकार की रचनाओं का स्वागत किया जायेगा। रचनाएँ साफ सुथरी तथा पृष्ठ के एक ही ओर लिखीं जानी चाहिए। अस्वीकृत रचना की वापिसी के लिए डाक खर्च संलग्न होना आवश्यक है।

९—समस्त पत्रव्यवहार का पता—'अहिंसा-वाणी' कार्यालय, अलीगञ्ज (एटा) उ० प्र०।

"दी वायस आव अहिंसा"

THE VOICE OF AHINSA

विश्व-शान्ति एवं मानवता का सर्वोच्च स्वर

देश-विदेश के ख्याति-लब्ध लेखकों की अमूल्य कृतियों से अलकृत

अहिंसा संस्कृति एवं जैन-दर्शन की एक मात्र सचित्र द्विमासिक पत्रिका

यदि आप अभी तक इस पत्रिका के ग्राहक न बने हों तो अहिंसा-प्रसारार्थ अविलम्ब ही छः रुपए ६) का मनीआर्डर भेजकर ग्राहक बन जाइए।

व्यवस्थापक

दी 'वायस आव अहिंसा'—कार्यालय

अलीगञ्ज, (एटा) उ० प्र०

प्रकाशक:—पं० रेवतीलाल अग्निहोत्री, अ० वि० जैन मिशन अलीगञ्ज (एटा)

मुद्रक:—राजेन्द्रदत्त वाजपेयी, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग।